ٹیپا ۱۰ احمد کش ۸ سیمرہ ۳ سار ۳

لدا کسے بہ بس

کاکو | ٣ نا بحل | سلہ بس
۳۰ بار | ۱۰۱ بار | نا بحل
 | | ۲

॥ श्रीः ॥

शिवस्वरोदय.

श्री शिवपार्वतीसंवाद.

तिसको

पंडित गोपालपुरनिवासी रामाधीनशर्मासे

शुद्ध सरल हिन्दीभाषा टीका

बनवायकर

हरिप्रसाद भगीरथजी

इन्होंने

श्री "गजानन" छापेखानेमें छपवायकर

प्रसिद्ध किया,

बम्बई.

शके १८१९, सम्बत् १९५४.

भूमिका.

यह शिवस्वरोदय ग्रंथ योगशास्त्रका अंग है. इसका मतलब ज्योतिषकी तरह सर्व साधारणका अतिही सहायक है. परंतु इसका प्रकाश न होनेसे बहुत लोग इसके अनुभवके ज्ञाता क्या नामसेभी वाकिफ न थे इसी सबबसे और संस्कृत होनेसे सबको स्वरज्ञान न होता था. इसलिये कि जिसमें सब लोगोंको भलीभांति स्वरज्ञान होवे. तिससे इस ग्रंथका **गोपालपुरनिवासिपंडितश्रीरामाधीन-शर्म्मासे** शुद्ध सरल हिन्दी भाषा टीका करवाय तथा **वेरीनगर निवासि पंडितबस्तीराम शर्म्मासे** संस्कृत मूल वा भाषा टीका शुद्ध करवायके द्वितीयावृत्ति छपाके प्रसिद्ध किया है. यदपि स्वरज्ञान गुरुके उपदेश शिवाय अन्यथा अच्छीतरह समझता नहीं यह सत्य है तथापि इस भाषान्तरमें ऐसी युक्ति की है कि जिससे सामान्य स्वरज्ञान होगा.

और इसमें स्वर, तत्वें, युद्ध, ध्यान, वशीकरण, गर्भाधान, संवत्सरफल, रोग, मरण इत्यादि ·निर्णय भली भांति किया है. और किस कार्यमें कौन स्वर वर्जित है ? किस स्वरमें कौनसा कार्य करनेसे सिद्ध होता है ? यहभी कहा है. आशा है कि सुजन उदार पुरुष इसे एकबार अवलोकन करके इस मेरे परिश्रमको सफल करेंगे और इसमें जो कहीं दृष्टिदोषसे अशुद्धि रहीहो उसे गुणग्राही लोग सुधार लेवें.

हरिप्रसाद भगीरथजी.

ठिकाना—कालकादेवी रोड़ रामवाड़ी, बम्बई.

अथ शिवस्वरोदयकी विषयानुक्रमणिका.

समाप्तेयमनुक्रमणिका.

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ

शिवस्वरोदयः प्रारभ्यते।

महेश्वरंनमस्कृत्यशैलजांगणनायकम् ॥
गुरुंचपरमात्मानंभजेसंसारतारणम्॥ १॥

अर्थ–शिव, पार्वती, गणेश, इनको नमस्कार करके संसार तारक गुरु और परमात्माको मैं भजताहूं ॥ १ ॥

देव्युवाच ॥ देवदेवमहादेवकृपांकृत्वा-ममोपरि ॥ सर्वसिद्धिकरंज्ञानंकथय-स्वममप्रभो ॥ २ ॥

अर्थ–देवी (पार्वती) शंकरसे प्रश्न करती हैं कि हे देवाधिदेव! शंकर ! मेरे ऊपर दया करके हे प्रभो! सर्वसिद्धियोंके करनेवाला ज्ञान मेरेको कहो? ॥ २ ॥

कथंब्रह्मांडमुत्पन्नंकथंवापरिवर्त्तते ॥
कथंविलीयतेदेववदब्रह्मांडनिर्णयम् ॥ ३ ॥

अर्थ–हे देव! कैसे ब्रह्मांड उत्पन्न भया? और

कैसे याकी स्थिति है? कैसे प्रलय होता है? सो सब आप ब्रह्मांडका निर्णय कहो? ॥ ३ ॥

ईश्वरउवाच ॥ तत्वाद्ब्रह्मांडमुत्पन्नं तत्वेनपरिवर्तते ॥ तत्वेविलीयतेदेवितत्वाद्ब्रह्मांडनिर्णयः ॥ ४ ॥

अर्थ—ऐसा पार्वतीका प्रश्न सुनके शंकर पार्वतीसे कहते हैं, हे देवि! तत्त्वोंसे ब्रह्मांड उत्पन्न होता है. और तत्त्वोंसे या ब्रह्मांडकी स्थिति है. तत्त्वोंमेंही लय होता है अर्थात् तत्त्वोंसेही ब्रह्मांडका निर्णय है ॥ ४ ॥

देव्युवाच ॥ तत्वमेवपरंमूलंनिश्चितं तत्ववादिभिः ॥ तत्वस्वरूपंकिंदेव तत्वमेवप्रकाशय ॥ ५ ॥

अर्थ—देवी बोली, हे देव! तत्त्ववादियोंने तत्त्वहीको ब्रह्मांडका मूल सिद्धांत किया है सो तत्त्वोंका स्वरूप क्या है? वह आपही प्रकाशय अर्थात् प्रसिद्ध करो? ॥ ५ ॥

ईश्वरउवाच ॥ निरंजनोनिराकारएकोदेवोमहेश्वरः ॥ तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसंभवः ॥ ६ ॥

अर्थ—शंकर बोले, माया प्रपंचसे रहित आकारसे हीन, एक, सर्वांतर्यामी परमात्मा उस परमा-

त्मासे आकाश उत्पन्न भया और आकाशसे युवा भया ॥ ६ ॥

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततःपृथ्वी-
समुद्भवः ॥ एतानिपंचतत्वानि
विस्तीर्णानिचपंचधा ॥ ७ ॥

अर्थ—वायुसे तेज, तेजसे जल, जलसे पृथ्वी, पैदा हुई. ए पांच तत्त्वें प्रत्येक पांच पांच प्रकारसे विस्तार होतीं भई ॥ ७ ॥

तेभ्योब्रह्मांडमुत्पन्नंतैरेवपरिवर्त्तते ॥
विलीयतेचतत्रैवतत्रैवरमतेपुनः ॥ ८ ॥

अर्थ—उन्हीं तत्त्वोंसे ब्रह्मांड उत्पन्न भया; उन्हीं-हींसे याकी स्थिति है और वैही तत्त्वोंमें याकी लय होती है. फिरि वैही तत्त्वोंमें यह रमता है ॥ ८ ॥

पंचतत्वमयेदेहेपंचतत्वानिसुंदरि ॥ सूक्ष्म-
रूपेणवर्त्ततेज्ञायंतेतत्वयोगिभिः ॥ ९ ॥

अर्थ—हे सुन्दरि ! पंचतत्त्वमय देहमे पांच तत्त्वें सूक्ष्म रीतीसे रहती हैं उन्होंको तत्त्वके जाननेवाले योगी लोग जानते है ॥ ९ ॥

अथस्वरंप्रवक्ष्यामिशरीरस्थस्व-
रोदयम् ॥ हंसचारस्वरूपेणभ-
वेज्ज्ञानंत्रिकालजम् ॥ १० ॥

अर्थ—अब शरीरमें स्थित जो अकारादिक स्वरोंके

उच्चारणका मूलभूत स्वर तिसविषयमें मैं कहेता हूं कि जिस स्वरज्ञान होनेसे (हंसचार) श्वासको भीतर होना और बाहेर निकालनेमें (सोहं) सः अहं ऐसा जो उच्चार होता है तिसीसे भूत, भविष्य, वर्त्तमान ऐसे तीन कालका ज्ञान होता है ॥ १० ॥

गुह्याद्गुह्यातरंसारमुपकारप्रकाशनम् ॥ इदंस्वरोदयज्ञानंज्ञानानां मस्तकेमणिः ॥ ११ ॥

अर्थ–गोप्यसे गोप्य,सारभूत और उपकारको प्रकाश करनेवाला यह स्वरोदय ज्ञान सर्व ज्ञानोंमें श्रेष्ठ है॥ ११॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंज्ञानंसुबोधंसत्यप्रत्ययम् ॥ आश्चर्यंनास्तिकेलोके-आधारंत्वास्तिकेजने ॥ १२ ॥

अर्थ–और बहुत बारीख, सुन्दर बोधयुक्त यह स्वरज्ञान है. और एक सत्यहीसे निश्चित होता है. और नास्तिकजनोंको आश्चर्यरूप और आस्तिक जनोंको आधारभूत है ॥ १२ ॥

अथशिष्यलक्षणं.

शांतेशुद्धेसदाचारेगुरुभक्तयेकमानसे ॥ दृढचित्तेकृतज्ञेचदेयंचैव स्वरोदयम् ॥ १३ ॥

अर्थ–शांत, शुद्ध, सदाचारयुक्त गुरुभक्तिमें

तत्पर, दृढ़मन, और कृतज्ञ (किये हुये उपकारको जो जानै व मानै) ऐसे शिष्यको स्वरोदयज्ञान देना चाहिये ॥ १३ ॥

दुष्टेचदुर्जनेक्रुद्धेनास्तिकेगुरुतल्पगे ॥ हीनसत्वेदुराचारेस्वरज्ञानंनदीयते ॥ १४ ॥

अर्थ–दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक, गुरु स्त्रीगमन करनेवाला, पराक्रमरहित अथवा धैर्यहीन, दुराचारी ऐसे शिष्यको स्वरज्ञान न देवै ॥ १४ ॥

शृणुत्वंकथितंदेविदेहस्थंज्ञानमुत्तमम् ॥ येन विज्ञातमात्रेणसर्वज्ञत्वंप्रणीयते ॥ १५ ॥

अर्थ–हे देवी! शरीरमें टिका हुवा उत्तम ज्ञान मैं कहता हूं सो तुम सुनों ! जिसके जानने मात्रसेही सर्व ज्ञान प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

स्वरेवेदाश्चशास्त्राणिस्वरेगांधर्वमुत्तमम् ॥ स्वरेचसर्वंत्रैलोक्यंस्वरमात्रस्वरूपकम्॥१६॥

अर्थ–स्वरमें सर्व वेद और शास्त्र हैं, स्वरमें श्रेष्ठ गान विद्या है, स्वरमें त्रिलोकी स्थित है, स्वरही आत्माका स्वरूप है ॥ १६ ॥

स्वरहीनश्चदैवज्ञोनाथहीनंयथा गृहम् ॥ शास्त्रहीनंयथावक्त्रं शिरोहीनंचयद्वपुः ॥ १७ ॥

अर्थ–स्वामीरहित जैसे घर, शास्त्रहीन जैसे मुख

मस्तकहीन जैसे शरीर ये नहीं शोभते तैसेही स्वरज्ञान रहित ज्योतिषी शोभता नहीं ॥ १८ ॥

नाडीभेदंतथाप्राण-तत्वभेदंतथैवच ॥ सुषुम्नामिश्रभेदंचयोजानातिसमुक्तिगः ॥ १८ ॥

अर्थ–नाड़ी भेद, तथा प्राणतत्त्व भेद इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदिकोंका मिलाहुवा भेद जो जानता है वह मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

साकारेवानिराकारेशुभवायुबलीकृते ॥ कथयंतिशुभंकेचित्स्वरज्ञाने वरानने ॥ १९ ॥

अर्थ–हे वरानने! (श्रेष्ठमुखवाली!) आकारसहित अथवा आकाररहित शुभ वायु स्वाधीन करेपर कोई स्वरज्ञानकोही शुभ कहते हैं ॥ १९ ॥

ब्रह्मांडखंडपिंडाद्याःस्वरेणैवहिनिर्मिताः ॥ सृष्टिसंहारकर्त्ताचस्वरः साक्षान्महेश्वरः ॥ २० ॥

अर्थ–ब्रह्मांड और शरीरादिकोंको लेके सब स्वरसेही रचे गये हैं; सृष्टि कर्त्ता और संहार कर्त्ता जो परमेश्वर वहभी साक्षात् स्वररूप है ॥ २० ॥

स्वरज्ञानात्परंगुह्यंस्वरज्ञानात्परं

धनम् ॥ स्वरज्ञानत्परंज्ञानंनवा
दृष्टंनवाश्रुतम् ॥ २१ ॥

अर्थ–स्वरज्ञानसे श्रेष्ट कोई गोप्य पदार्थ, स्वरज्ञानसे उत्कृष्ट कोई धन और स्वरज्ञानसे श्रेष्ठ कोई ज्ञान न देखा गया न सुना गया ॥ २१ ॥

शत्रुंहन्यात्स्वरबलेतथामित्रसमा-
गमः ॥ लक्ष्मीप्राप्तिःस्वरबलेकी-
र्तिःस्वरबलेसुखम् ॥ २२ ॥

अर्थ–स्वरबलसे शत्रुनाश तथा मित्रको मिलना वा स्वरज्ञानसे लक्ष्मी प्राप्ति तैसेही स्वरबलसे कीर्ति और सुखभी होता है ॥ २२ ॥

कन्याप्राप्तिःस्वरबलेस्वरतोराज-
दर्शनम् ॥ स्वरेणदेवतासिद्धिः
स्वरेणक्षितिपोवशः ॥ २३ ॥

अर्थ–स्वरबलसे कन्या पुत्रादि प्राप्त होवें. स्वरसे राजाकी मुलाकात होवे. स्वरबलसे देवताकी सिद्धि और स्वरसे राजाभी वश होता है ॥ २३ ॥

स्वरेणगम्यतेदेशोभोज्यंस्वरबले
तथा ॥ लघुदीर्घंस्वरबलेमलंचै-
वनिवारयेत् ॥ २४ ॥

अर्थ–स्वरबलसे दूसरे देशमें जावे तथा स्वरबलसे

श्रेष्ठ भोजन प्राप्त होवे. स्वरबलसे पेशाब और मल त्यागभी करै ॥ २४ ॥

सर्वशास्त्रपुराणादिस्मृतिवेदांग-
पूर्वकम् ॥ स्वरज्ञानात्परंतत्त्वंना
स्तिकिंचिद्वरानने ॥ २५ ॥

अर्थ–हे वरानने! सर्व शास्त्र पुराणादिक स्मृति, अंगसहित वेद स्वरज्ञानसे परे कुछभी श्रेष्ठ नहीं है ॥ २५ ॥

नामरूपादिकःसर्वोमिथ्यासर्वेषु-
विभ्रमः ॥ अज्ञानमोहितामूढा
यावत्तत्त्वंनविद्यते ॥ २६ ॥

अर्थ–अज्ञानसे मोहित, मूढ़ जबतक तत्त्व नहीं जानते तबतक नाम रूपादिकोंमें झूठा भ्रम रहता है अज्ञानभी तभीतक है ॥ २६ ॥

इदंस्वरोदयंशास्त्रंसर्वशास्त्रोत्तमो-
त्तमम् ॥ आत्मघटप्रकाशार्थंप्र-
दीपकलिकोपमम् ॥ २७ ॥

अर्थ–सब शास्त्रोंमें उत्तम यह स्वरोदय शास्त्र आत्मारूपी घटको प्रकाशनेके लिये महादीपकी समान है ॥ २७ ॥

यस्मैकस्मैपरस्मैवानप्रोक्तंप्रश्नहे-
तवे ॥ तस्मादेतत्स्वयंज्ञेयमात्म-

नोवाऽत्मनाऽत्मनि ॥ २८ ॥

अर्थ–यह स्वरोदय शास्त्र पूंछनेंसे हरकिसीके लिये न देवे अर्थात् आपही अपनेलिये अपनी बुद्धिसें अपनेही देहमें जानें ॥ २८ ॥

नतिथिर्नचनक्षत्रंनवारोग्रहदेवताः ॥ नचविष्टिर्व्यतीपातोवैधृत्याद्यास्तथैवच ॥ २९ ॥

अर्थ–इस स्वरोदय शास्त्रमें तिथि, नक्षत्र, वार, ग्रह, देवता, भद्रा, व्यतीपात, वैधृति आदिक दोष नहीं हैं ॥ २९ ॥

कुयोगोनास्तिकोदेविभविताचाकदाचन ॥ प्राप्तेश्वरबलेशुद्धेसर्वमेवशुभंफलम् ॥ ३० ॥

अर्थ–हे देवि! इस शास्त्रमें खोटा योग कोई नहीं है. और कभी होगाभी नहीं. शुद्ध स्वरबल प्राप्त होनेपर सब शुभही फल होता है ॥ ३० ॥

देहमध्येस्थितानाड्योबहुरूपाःसुविस्तरात् ॥ ज्ञातव्याश्चबुधैर्नित्यंस्वदेहज्ञानहेतवः ॥ ३१ ॥

अर्थ–देहके बीचमें नाना रूपवाली नाडियां विस्तारसे स्थित हैं वे पंडितोंनें अपने शरीरके ज्ञानके लिये हमेसह जाननी चाहिये ॥ ३१ ॥

नाभिस्थानगकंदोर्ध्वमंकुरादेव निर्गताः ॥ द्विसप्ततिसहस्राणि देहमध्येव्यवस्थिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ–नाभिस्थानसे लेके ऊपर कांधेतक निकला जो अंकुर तहांतक७२०००हजार नाड़ियां देहके बीचमें स्थित होरहीं हैं ॥ ३२ ॥

नाडीस्थाकुंडलीशक्तिर्भुजंगाकारशायिनी ॥ ततोदशोर्ध्वगानाड्योदशैवाधःप्रतिष्ठिताः ॥ ३३ ॥

अर्थ–सर्पकी तरह सोती हुई नाभिमें टिकी कुंडली नाम शक्ति है तिस्से दश नाड़ी ऊपरकी तर्फ गई हैं और दश नाड़ी नीचेकी तर्फ गई हैं ॥ ३३ ॥

द्वेद्वेतिर्यग्गतेनाड्यौचतुर्विंशतिसंख्यया ॥ प्रधानादशनाड्यस्तुदश वायुप्रवाहिकाः ॥ ३४ ॥

अर्थ–फिर दो दो नाड़ी तिरछी गई हैं ऐसे चौबीस २४ नाड़ी हैं. तहां दश नाड़ी मुख्य हैं और दश वायुको चलानेवाली हैं ॥ ३४ ॥

तिर्यगूर्ध्वास्तथाऽधःस्थावायुदेहसमन्विताः ॥ चक्रवत्संस्थितादेहेसर्वाः प्राणसमाश्रिताः ॥ ३५ ॥

अर्थ–तिरछी, ऊंची और नीची स्थित नाड़िया

वायु वा शरीरके आश्रित हैं तहां सब नाड़ियां देहमें चक्रकी तरह स्थित हैं इसीसे प्राणोंका आश्रय है ॥ ३५ ॥

तासांमध्येदशश्रेष्ठादशानांति-
स्रउत्तमाः ॥ इडाचपिंगलाचै-
वसुषुम्नाचतृतीयका ॥ ३६ ॥

अर्थ–तिन्होंके बीचमें दश नाडी श्रेष्ठ हैं और दसोमेंभी तीन श्रेष्ठ हैं. इड़ा, पिंगला तीसरी सुषुम्ना है ॥ ३६ ॥

गांधारीहस्तिजिव्हाचपूषाचैवयश-
स्विनी ॥ अलंबुषाकुहूश्चैवशांखिनी
दशमीतथा ॥ ३७ ॥

अर्थ–चौथी गांधारी, पांचवीं हस्तिजिव्हा, छठवीं पूषा, सातवीं यशस्विनी, आठवीं अलंबुषा, नवमीं कुहू, और दशवीं शंखिनी है ॥ ३७ ॥

इडावामेस्थिताभागेपिंगला
दक्षिणेस्मृता ॥ सुषुम्नामध्य
देशेतुगांधारीवामचक्षुषि ॥ ३८ ॥

अर्थ–इड़ा नाड़ी देहके बायें तर्फ रहती है और पिंगला दहिने तर्फ रहती है सुषुम्ना बीच के भागमें है और गांधारी बायें नेत्रमें रहती है ॥ ३८ ॥

दक्षिणेहस्तिजिव्हाचपूषाकर्णेच

दक्षिणे ॥ यशस्विनीवामकर्णे
आननेचाप्यलंबुषा ॥ ३९ ॥

अर्थ–हस्तिजिव्हा नाड़ी दहिने नेत्रमें रहती है. पूषा दहिने कानमें रहती है. यशस्विनी बायें कानमें रहती है. और अलंबुषा मुखमें रहती है ॥ ३९ ॥

कूहूश्चलिंगदेशेतुमूलस्थानेतुशं-
खिनी ॥ एवंद्वारंसमाश्रित्यतिष्ठं-
तिदशनाडिकाः ॥ ४० ॥

अर्थ–कुहू लिंग इंद्रियमें रहती है. और शंखिनी गुदस्थानमें है. ऐसे देहके द्वारको आश्रय लेके दश नाड़ी टिकी हुई हैं ॥ ४० ॥

इडापिंगलासुषुम्नाचप्राणमार्गेस
माश्रिताः ॥ एताहिदशनाड्यस्तु
देहमध्येव्यवस्थिताः ॥ ४१ ॥

अर्थ–इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, ये तीनों नाड़ी प्राणमार्गको आश्रय करके हैं ये दश नाड़ी देहके बीचमें स्थित हैं ॥ ४१ ॥

नामानिनाडिकानांतुवातानांतुव-
दाम्यहम् ॥ प्राणोऽपानःसमान-
श्चउदानोव्यानएवच ॥ ४२ ॥

अर्थ–नाडियोंके नाम तो कहे परंतु अब नाडियोंमें आश्रयभूत प्राण, अपान, समान, उदान, और

व्यान, इन पांच मुख्य वायुओंके नामोंको कहते हैं ॥ ४२ ॥

नागःकूर्मोऽथकृकलोदेवदत्तोधनं-
जयः ॥ हृदिप्राणोवसेन्नित्यमपानो
गुदमंडले ॥ ४३ ॥

अर्थ—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, ये उपप्राण हैं और प्राणवायु हमेशैं हृदयमें रहता है अपानवायु गुदास्थानमें रहता है ॥ ४३ ॥

समानोनाभिदेशेतुउदानःकंठमध्यगः ॥
व्यानोव्यापीशरीरेषुप्रधानादशवायवः
॥ ४४ ॥ प्राणाद्याः पंचविख्यातानागा-
द्याःपंचवायवः॥तेषामपिचपंचानांस्था-
नानिचवदाम्यहम् ॥ ४५ ॥

अर्थ—समान नाभिमें रहता है, उदान कंठके बीचमें है, व्यान सर्वशरीरमें व्याप्त है, ऐसे दश वायु देहमें श्रेष्ठ हैं ॥ ४४ ॥ प्राण आदिक पांच वायुओंके स्थान कहे अब नागादिक पांच वायु हैं तिन पांचोंकेभी स्थानोंको मैं कहता हूं ॥ ४५ ॥

उद्गारेनागआख्यातःकूर्मउन्मीलने
स्मृतः ॥ कृकलःक्षुतकृज्ज्ञेयोदेवद-
त्तोविजृंभणे ॥ ४६ ॥

अर्थ—नागवायु अढकार लेनेमें है, कूर्मवायु नेत्रोंके

खोलने अथवा मूंदनेमें है. कृकलवायु छींक लेनेके स्थानमें है, देवदत्तवायु जंभाई लेनेमें है ॥ ४६ ॥

नजहातिमृतंवापिसर्वव्यापीधनंजयः ॥ एतेनाडीषुसर्वासुभ्रमंते जीवरूपिणः ॥ ४७ ॥

अर्थ–धनंजयवायु सर्व शरीरमें व्याप्त है इसीलिये मृतक शरीरकोभी नहीं त्यागता ये दश वायु सब नाडियोंमें जीवरूपसे भ्रमा करते हैं ॥४७॥

प्रकटंप्राणसंचारंलक्षयेद्देहमध्यतः ॥ इडापिंगलासुषुम्नाभिर्नाडीभिस्तिसृभिर्बुधः ॥ ४८ ॥

अर्थ–शरीरके बीचमें प्रकट प्राणका संचार है उसको ज्ञानवान् इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना इन तीन नाड़ियोंसे जानें ॥ ४८ ॥

इडावामेचविज्ञेयापिंगलादक्षिणेस्मृता ॥ इडानाड़ीस्थितावामाततोव्यस्ताचपिंगला ॥ ४९ ॥

अर्थ–इड़ा देहके बायें तर्फ जाननी. पिंगला दहिने तर्फ जाननी. इड़ा नाड़ी वामावर्त्तसे टिकी है और पिंगला दक्षिणावर्त्तसे टिकी है ॥ ४९ ॥

इडायांतुस्थितश्चंद्रःपिंगलायांचभा-

स्करः ॥ सुषुम्नाशंभुरूपेणशंभुर्हंस-
स्वरूपतः ॥ ५० ॥

अर्थ–इड़ा नाड़ीमें चंद्रमा रहता है. पिंगलामें सूर्य हैं. सुषुम्ना शंकररूपसे स्थित है. शंकरभी हंस-रूपसे स्थित हैं ॥ ५० ॥

हकारोनिर्गमेप्रोक्तःसकारेणप्रवेशन-
म् ॥ हकारःशिवरूपेणसकारःशक्ति-
रुच्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ–हकार स्वरके निकलनेमें कहा है. सकार भीतर स्वर जानेमें कहा है. हकार शिवरूप है. और सकार शक्तिरूप कही है ॥ ५१ ॥

शक्तिरूपस्थितश्चंद्रोवामनाडीप्र-
वाहकः ॥ दक्षनाडीप्रवाहश्चशंभु-
रूपोदिवाकरः ॥ ५२ ॥

अर्थ–बाई नाड़ीको चलानेवाला चंद्रमा शक्ति-रूपसे स्थित है और दहिनी नाड़ीको चलानेवाला सूर्य शंकररूपसे स्थित है ॥ ५२ ॥

श्वासेसकारसंस्थेतुयद्दानंदीयते
बुधैः ॥ तद्दानंजीवलोकेऽस्मिन्
कोटिकोटिगुणंभवेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ–सकारमें टिके हुवे श्वासके वखत जो दान ज्ञानवानोंसे दिया जाता है उस दानका इस मनुष्य

लोकमें कोटि कोटि अर्थात् असंख्यगुण फल होता है ॥ ५३ ॥

अनेनलक्षयेद्योगीचैकचित्तःसमा-
हितः ॥ सर्वमेवविजानीयान्मार्गे
वैचंद्रसूर्ययोः ॥ ५४ ॥

अर्थ–एकाग्र दिलसे सावचेत हुवा योगी इस प्रकारसे अवलोकन करै और सबहीको चंद्रमा सूर्यके मार्गमें जानें ॥ ५४ ॥

ध्यायेत्तत्त्वंस्थिरेजीवेअस्थिरेनक-
दाचन ॥ इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्यमहा-
लाभोजयस्तथा ॥ ५५ ॥

अर्थ–जीवको स्थिर भये पर तत्वको ध्यान करै और जब स्वस्थ चित्त नहो तब कभी ध्यान न करै तिसका मनोरथ सिद्ध होता है तैसेही बहुत लाभ वा जयभी होता है ॥ ५५ ॥

चंद्रसूर्यसमभ्यासंयेकुर्वंतिसदा
नराः ॥ अतीतानागतज्ञानंतेषां
हस्तगतंभवेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ–जे मनुष्य चंद्र सूर्यको हमेंशैं सम्यक् रीतिसे अभ्यास करते हैं; उनको भूत भविष्यका ज्ञान हाथमें प्राप्त प्रत्यक्ष होता है ॥ ५६ ॥

वामेचामृतरूपास्याज्जगदाप्याय-

नंपरम् ॥ दक्षिणेचरभागेनजगदु-
त्पादयेत्सदा ॥ ५७ ॥

अर्थ—बायीं तर्फ स्थित इड़ा नाड़ी अमृतरूप है; इसीसे संसारको पुष्ट करनेवाली है. दहिनी तर्फ चर भागसे स्थित पिंगला हमेंशें संसारको पैदा करती है ॥ ५७ ॥

मध्यमाभवतिक्रूरादुष्टासर्वत्रक-
र्मसु ॥ सर्वत्रशुभकार्येषुवामाभ-
वतिसिद्धिदा ॥ ५८ ॥

अर्थ—बीचमें वास करनेवाली सुषुम्ना नाड़ी दुष्ट है. इसीसे सब कामोमें निंद्य है. और बाम नाड़ी सब शुभ कामोमें सिद्धिको देती है ॥ ५८ ॥

निर्गमेतुशुभावामाप्रवेशेदक्षिणा
शुभा ॥ चंद्रःसमस्तुविज्ञेयोरवि-
स्तुविषमःसदा ॥ ५९ ॥

अर्थ—श्वासके निकलनेके समय बाईं नाड़ी शुभ है और श्वासके अंदर जानेके समय दहिनी नाड़ी शुभ है चंद्रमा बराबर कहा है सूर्य हमेंशें विषम कहा है ॥ ५९ ॥

चंद्रःस्त्रीपुरुषःसूर्यश्चंद्रोगौरोऽसि-
तोरविः ॥ चंद्रनाडीप्रवाहेणसौ-
म्यकार्याणिकारयेत् ॥ ६० ॥

अर्थ–चंद्रमा स्त्री, सूर्य पुरुष और चंद्रमा गौर बर्ण, सूर्य श्यामबर्ण है. इसी लिये चंद्र नाड़ी प्रबाहसे उत्तम कामोंको करै ॥ ६० ॥

सूर्यनाडीप्रवाहेणरौद्रकर्माणिकारयेत् ॥ सुषुम्नायाःप्रवाहेणभक्तिमुक्तिफलानिच ॥ ६१ ॥

अर्थ–सूर्य नाड़ीके चलनेमें दुष्ट कामोंको करै; सुषुम्नाके चलनेमें भक्ति मुक्तिके फलोंको देनेवाले कामोंको करै ॥ ६१ ॥

आदौचंद्रःसितेपक्षेभास्करोहिसितेतरे ॥ प्रतिप्रत्तोदिनान्याहुस्त्रीणित्रीणिकृतोदयौ ॥ ६२ ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमें पहले चंद्रमा और कृष्णपक्षमें सूर्य ऐसे क्रमसे प्रतिपदा आदिलेके तीन तीन दिन चंद्रमा और सूर्यके स्वरोंका उदय होता है ॥ ६२ ॥

सार्धद्विघटिकेज्ञेयःशुक्लेकृष्णेशशी रविः ॥ वहत्येकदिनेनैवयथाषष्ठिघटीःक्रमात् ॥ ६३ ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमें अढ़ाई २॥ घटी चंद्रमा और कृष्णपक्षमे अढ़ाई २॥ घटी प्रथम दिनके उदय होनेमें सूर्यका स्वर चलता है, ऐसे एकही दिनकी ६० घड़ियोमें क्रमसे चलते हैं ॥ ६३ ॥

वहेयुस्तद्घटीमध्येपंचतत्वानिनिर्दिशेत् ॥ प्रतिपत्तोदिनान्याहुर्विपरीते विवर्जयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ–फिर उनघटियोंके बीचमें पांच तत्व चलते हैं; ऐसा ससझना. पुनः प्रतिपदासे जो तीन दिन कहे हैं; उन्होंपर विपरीत कहे सूर्यके दिनोंमें चंद्रमा और चंद्रमाके दिनोंमें सूर्य जो होवे तो मंगल कार्यमें त्याग देवे ॥ ६४ ॥

शुक्लपक्षेभवेद्वामाकृष्णपक्षेचदक्षिणा ॥ जानीयात्प्रतिपत्पूर्वयोगीतद्यतमानसः ॥ ६५ ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमें प्रतिपदाके प्रथम बाईं नाड़ी और कृष्णपक्षमें प्रथम दहिनी नाड़ीको योगी लोक एकाग्र चित्त होके चंद्र सूर्यके स्वरोंको जानें ॥ ६५ ॥

शशांकंवारयेद्रात्रौदिवावारयभास्करं ॥ इत्यभ्यासरतोनित्यंसयोगीनात्रसंशयः ॥ ६६ ॥

अर्थ–रात्रिमें चंद्रमाके स्वरको न चलावै और दिनमें सूर्यके स्वरको न चलावै. ऐसे अभ्यासमें निमग्न हुवा योगी श्रेष्ठ है. इसमें शक नहीं ॥ ६६ ॥

सूर्येणबध्यतेसूर्यश्चंद्रश्चंद्रेणबध्यते ॥ योजानातिक्रियामेतांत्रैलोक्यंवशगं

क्षणात् ॥ ६७ ॥

अर्थ—सूर्यके स्वरसे सूर्य ढकते हैं. और चंद्रमाके स्वरसे चंद्रमा ढकते हैं. इस क्रियाको जो जानता है; उसके तीनों लोक क्षणमात्रमें वशीभूत होते हैं ॥ ६७ ॥

उदयंचंद्रमार्गेणसूर्येणास्तमनं यदि ॥ तदातेगुणसंघाताविपरीतंविवर्जयेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—चंद्र स्वरसे दिनका उदय और सूर्यके स्वरसे अस्त होवे तो अनेक गुण पैदा होते हैं. और जब इससे उलटा होवे तब अनेक दोष होते हैं. इससे उसको शुभ कामोंमे वर्ज देवे ॥ ६८ ॥

गुरुशुक्रबुधें*दूनांवासरेवामनाडिका ॥ सिद्धिदासर्वकार्येषुशुक्लपक्षेविशेषतः ॥ ६९ ॥

अर्थ—गुरु, शुक्र, बुध, सोम, इन बारोंमें वाम नाड़ी चले तो सब कामोंमें सिद्धिके देनेवाली है और शुक्लपक्षमें अधिक सिद्धिके देनेवाली है ॥ ६९ ॥

अर्कांगारकसौरीणांवासरेदक्षनाडिकाः ॥ स्मर्त्तव्याचरकार्येषुकृष्णपक्षेविशेषतः ॥ ७० ॥

---

* कोई बुधवारके दिन सुषुम्ना नाड़ीको उत्तम कहते हैं.

अर्थ–रवि, मंगल, शनि, इन वारोंमें दहिनी नाड़ी चले तो चर कामोंमें उत्तम है. और कृष्ण पक्षमें चले तो अत्युत्तम है ॥ ७० ॥

प्रथमंवहतेवायुःद्वितीयंचतथाम-
लः ॥ तृतीयंवहतेभूमिश्चतुर्थंवा-
रुणीवहेत् ॥ ७१ ॥

अर्थ–पहला वायुतत्व चलता है, दूसरा अग्नि-तत्व, तीसरा पृथ्वीतत्व चलता है, और चौथा जल-तत्व चलता है ॥ ७१ ॥

सार्धद्विघटिकेपंचक्रमेणैवोदयं-
तिच ॥ क्रमादेकैकनाड्यांचत-
त्वानांपृथगुद्भवः ॥ ७२ ॥

अर्थ–ये पांच तत्वें एक स्वरकी अढ़ाई घड़ियोमें क्रमसे उदय होते हैं. और क्रमसे एक २ नाड़ीमे पा-चोंतत्व पैदा होते हैं ॥ ७२ ॥

अहोरात्रस्यमध्येतुज्ञेयाद्वादशसं-
क्रमाः ॥ वृषकर्कटकन्यालिमृग-
मीनानिशाकरे ॥ ७३ ॥

अर्थ–दिन रात्रिके बीचमें बारह संक्राति जा-ननी चाहिये वहां वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन, ये चंद्रमाकी राशि कहाती हैं ॥ ७३ ॥

मेषसिंहौचकुंभश्चतुलाचमिथुनं

धनम् ॥ उदयेदक्षिणेज्ञेयःशु-
भाशुभविनिर्णयः ॥ ७४ ॥

अर्थ–मेष, सिंह, कुंभ, तुला, मिथुन, धन ये सूर्यकी राशि जाननीं. इनके दहिनें स्वरके चलनेमें वस्तुको शुभाशुभ निर्णय जानना चाहिये ॥ ७४ ॥

तिष्ठेत्पूर्वोत्तरेचंद्रोभानुःपश्चिमद-
क्षिणे ॥ दक्षनाड्याःप्रसारेतुनग-
च्छेद्याम्यपश्चिमे ॥ ७५ ॥

अर्थ–चंद्रमा पूर्व और उत्तर दिशामें रहता है, सूर्य पश्चिम और दक्षिण दिशामें रहता है इसी लिये दहिनी नाड़ी चलनेपर दक्षिण और पश्चिम दिशाको यात्रा न करे ॥ ७५ ॥

वामाचारप्रवाहेतुनगच्छेत्पूर्वउ-
त्तरे ॥ परिपंथिभयंतस्यगतोऽसौ
ननिवर्त्तते ॥ ७६ ॥

अर्थ–बांई नाड़ी चलनेपर पूर्व और उत्तर दिशाको यात्रा न करे; जानेवालेको शत्रुसे भय होता है. और गयाभी तो फिर पीछे लौटके नहीं आवे॥ ७६ ॥

तत्रतस्मान्नगंतव्यंबुधैःसर्वहितै-
षिभिः ॥ तदातत्रतुसंयातेमृत्यु-
रेवनसंशयः ॥ ७७ ॥

अर्थ–तिससे सबके हितकी चाह करनेवाले

ज्ञानवान् पुरुषोंने तिस वखत विदेशमें नहीं जाना. उस वखत तिनदिशाओंमें जानेसे मृत्युही होती है. इसमें शक नहीं ॥ ७७ ॥

शुक्लपक्षेद्वितीयायामर्केवहतिचं-
द्रमाः ॥ दृश्यतेलाभदः पुंसांसौ-
म्येसौख्यंप्रजायते ॥ ७८ ॥

अर्थ–शुक्लपक्षमें द्वितीयाको जो सूर्यके स्वरके समय चंद्रमाका स्वर चले; तो बह चंद्रदर्शन पुरुषों-को लाभदायक है. और सौम्य कार्योमें सुखभी उत्पन्न करै ॥ ७८ ॥

सूर्योदयेयदासूर्यश्चंद्रश्चंद्रोदयेभ-
वेत् ॥ सिध्यंतिसर्वकार्याणिदि-
वारात्रिगतान्यपि ॥ ७९ ॥

अर्थ–जिस दिनमें सूर्यका स्वर चलनेंको कहा है. उसी दिन सूर्यस्वर चलै और चंद्रस्वर जिस दिन चलनेको कहा है. उसी दिन जो चंद्रस्वर चलै. तो उस दिनके और रात्रिके किये हुये सब काम सिद्ध होते हैं ॥ ७९ ॥

चंद्रकालेयदासूर्यःसूर्यश्चंद्रोदये
भवेत् ॥ उद्वेगःकलहोहानिःशु-
भंसर्वंनिवारयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ–चंद्रस्वरके समय सूर्यस्वर और सूर्यस्वरके

समय जो चंद्र स्वर चलै तो उद्वेग (डर) लड़ाई हानि होती है तब शुभ सब काम न करै ॥ ८० ॥

सूर्यस्यवाहेप्रवदंतिविज्ञाज्ञानंह्यगम्यस्यतुनिश्चयेन ॥ श्वासेनयुक्तस्यतुशीतरश्मेःप्रवाहकालेफलमन्यथास्यात् ॥ ८१ ॥

अर्थ–सूर्यस्वरके चलेपर अगम्य (अतर्क्य) ज्ञान निश्चय होता है; ऐसा ज्ञानवान् कहते हैं. और चंद्रस्वरसे युक्त यह ज्ञान पुरुषको नहीं होता है ॥ ८३ ॥

अथविपरीतलक्षणम्.

यदाप्रत्यूषकालेनविपरीतोदयोभवेत् ॥ चंद्रस्थानेवहत्यर्कोरविस्थानेचचंद्रमाः ॥ ८२ ॥ प्रथमेमनउद्वेगंधनहानिर्द्वितीयके ॥ तृतीयेगमनंप्रोक्तंइष्टनाशंचतुर्थके ॥ ८३ ॥ पंचमेराजविध्वंसंषष्ठेसर्वार्थनाशनम् ॥ सप्तमेव्याधिदुःखानिह्यष्टमेमृत्युमादिशेत् ॥ ८४ ॥

अर्थ–अब विपरीत स्वरके लक्षण कहते हैं. कि चार घड़ीके सबेरेसे लेके स्वरोंका उलटा उदय होवे

कि जैसे चंद्रस्वरकी जगंहमें सूर्यस्वर और सूर्यस्वर-की जगंहमें चंद्रस्वर होवे तो यह फल होता है कि॥८२॥ पहले समयमें मनका उद्वेग, दूसरे समय धनहानि, तृतीय समयमें यात्रा होवे और चौथे समयमें इष्ट पदार्थका नाश होवे ॥ ८३ ॥ पांचवेमें राज्यका विध्वंस, छठेंमें सब बस्तुओंको नाश, सातवेंमें रोगादिकोंसे दुःख और आठवेंमें मृत्यु होवे ॥ ८४ ॥

कालत्रयेदिनान्यष्टौविपरीतंयदा
वहेत् ॥ तदादुष्टफलंप्रोक्तंकिंचि-
न्न्यूनंतुशोभनम् ॥ ८५ ॥

अर्थ–आठ दिनतक जो प्रातःकाल मध्यान्ह सायंकाल इन तीनों कालोंमें विपरीत स्वर चलै तो दुष्टफल होता है और जो थोड़ा कम होवे तो शुभ फल होता है ॥ ८५ ॥

प्रातर्मध्याह्नयोश्चंद्रःसायंकालेदि-
वाकरः ॥ तदानित्यंजयोलाभोवि-
परीतंविवर्जयेत् ॥ ८६ ॥

अर्थ–प्रातःकाल और मध्यान्हकालमें जो चंद्र-स्वर चलता होवे और सायंकालमें सूर्यस्वर होवे तो हमेशैं जय लाभ होता है और इस्से उलटा होनेमें दुःख देता है ॥ ८६ ॥

वामेवादक्षिणेवापियत्रसंक्रमतेशि-

वः ॥ कृत्वातत्पादमादौचयात्राभ-
वतिसिद्धिदा ॥ ८७ ॥

अर्थ—बायां अथवा दहिना इन दोनोंमेसे कोईभी स्वर चलता होवे तो उस समय उसही पैरको आगे करके चलै तो वह यात्रा सिद्धिके देनेवाली होती है ॥ ८७ ॥

चंद्रःसमपदःकार्योरविस्तुविषमः
सदा ॥ पूर्णपादंपुरस्कृत्ययात्रा
भवतिसिद्धिदा ॥ ८८ ॥

अर्थ—चंद्रमाके स्वरमें २, ४, ६ इत्यादिक सम पैर आगे करै और सूर्यके स्वरमें १, ३, ५ इत्यादि विषम पैर आगे करै ऐसे पूर्ण पैरोंको आगे करके गमन करनेसे यात्रा सिद्धिके देनेवाली होती है ॥ ८८ ॥

यत्रांगेवहतेवायुस्तदंगकरसत्त-
लात् ॥ सुप्तोत्थितोमुखंस्पृष्ट्वाल-
भतेवांछितंफलम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—सोके उठा हुवा पुरुष जौनसा स्वर चलता होवे उसही अंगके हाथकी गदोरीसे (हथेलीसे) मुखको छूके मनोभिलषित फलको प्राप्त होता है॥८९॥

परदत्तेतथाग्राह्येगृहान्निर्गमनेऽपि-
च ॥ यदंगेवहतेनाडीग्राह्यंतेनक-
रांघ्रिणा ॥ ९० ॥

अर्थ—दूसरेको देनेमें तथा दुसरेसे लेनेमें और घरसे जानेमें जिस अंगका स्वर चलता होवे उसही हाथ पैरसे काम करना ॥ ९० ॥

नहानिःकलहोनैवकंटकैर्नापिभि-
द्यते ॥ निवर्त्ततेसुखीचैवसर्वोप-
द्रववर्जितः ॥ ९१ ॥

अर्थ—तिसकाममें हानि, कलह नहीं. होते और शत्रुओंसेभी नाश नहीं होता. फिर सब उपद्रवोंसे रहित सुखसे घरमे पीछा आता है ॥ ९१ ॥

गुरुबंधुनृपामात्येष्वन्येषुशुभदा-
यिनी ॥ पूर्णांगेखलुकर्त्तव्याकार्य-
सिद्धिर्मनःस्थिता ॥ ९२ ॥

अर्थ—गुरु, बंधु, राजा, मंत्री इत्यादिको लेके तथा शुभके देनेवाले अन्य जन इन सबोंकेविषें पूर्णांगमें अर्थात् जौनसा स्वर चलताहो उसी तर्फ बैठके काम करे तो मनमें स्थित कार्यकी सिद्धि होती है ॥ ९२ ॥

अग्निचोराधर्मधर्माअन्येषांवादि-
निग्रहाः ॥ कर्त्तव्याःखलुरिक्ता-
यांजयलाभसुखार्थिभिः ॥ ९३ ॥

अर्थ—अग्निदाह, चोरका तथा, अधर्मका काम और बादियोंको निग्रह करना होवे तो जय, लाभ, सुख इन्होंकी इच्छावाले मनुष्योंने रिक्ता नाड़ीमें करना ॥ ९२ ॥

दूरदेशेविधातव्यंगमनंतुहिमद्यु-
तौ ॥ अभ्यर्णदेशेदीप्तेतुतरणा
वितिकेचन ॥ ९४ ॥

अर्थ–कितने जनोंका मत ऐसा है. कि दूर देशमें यात्रा करनी होवे; तो चंद्रमाके स्वरमें यात्रा करै. और समीप देशमें यात्रा करनी होवे; तो सूर्यके स्वरमें यात्रा करै ॥ ९४ ॥

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टंलाभादिसमराग-
मः ॥ तत्सर्वंपूर्णनाडीषुजायतेनिर्वि-
कल्पकम् ॥ ९५ ॥ शून्यनाड्याविप-
र्यस्तंयत्पूर्वंप्रतिपादितं ॥ जायतेना
न्यथाचैवयथासर्वज्ञभाषितम् ॥ ९६ ॥

अर्थ–लाभ आदि तथा युद्ध समागम जो कुछ पहले कहा गया वह सब पूर्णस्वरके चलनेमें शंकारहित होता है ॥ ९५ ॥ जो पहले कहा गया वही लाभ इत्यादिक खाली नाड़ी चलनेमें उलटा फल होता है यह शंकरका कहा हुवा बचन है; इसीसे अन्यथा नहीं हो शक्ता ॥ ९६ ॥

व्यवहारेखलोच्चाटेद्वेषिविद्यादिवं-
चके ॥ कुपितस्वामिचोराद्येपूर्ण-
स्थाःस्युर्भयंकराः ॥ ९७ ॥

अर्थ–व्यवहार, दुष्टोंका उच्चाटन, द्वेष करनेवा-

लोंको विद्यासे ठगना, गुस्सा हुवा स्वामी, चोर, इन-
के कामोंमें पूर्णस्वर चलता है तो भय है ॥ ९७ ॥

दूराध्वनिशुभश्चंद्रोनिर्विघ्नोऽभी-
ष्टसिद्धिदः ॥ प्रवेशकार्यहेतौच
सूर्यनाडीप्रशस्यते ॥ ९८ ॥

अर्थ—दूर रास्ताके जानेमें चंद्रस्वर निर्बिघ्न इष्ट सिद्धिका देनेवाला है. और प्रबेशके कामोंमें सूर्य-नाड़ी शुभके देनेंवाली है ॥ ९८ ॥

अयोग्येयोग्यतानाड्यायोग्यस्था-
नेऽप्ययोग्यता ॥ कार्यानुबंधनो
जीवोयथारुद्रस्तथाचरेत् ॥९९॥

अर्थ—अयोग्यमें नाड़ीकी योग्यता होवे; और यो-ग्यके स्थानमें अयोग्यता होवे; तो यह प्राणी कार्य-बंधनयुक्त हो जाता है. इससे जैसा स्वर चलै वैसा-ही आचारण करना योग्य है ॥ ९९ ॥

चंद्रचारेविषहतेसूर्योबलिवशंनये-
त् ॥ सुषुम्नायांभवेन्मोक्षएकोदे-
वस्त्रिधास्थितः ॥ १०० ॥

अर्थ—चंद्रस्वर चलने पर विष दूर होवे और सूर्यस्वर चलनेमें बलवान् स्वाधीन होवे. सुषुम्ना नाड़ीमें मोक्ष होवे. ऐसे एक देव तीन प्रकारसे स्थित हैं ॥ १०० ॥

शुभान्यशुभकार्याणिक्रियंतेऽहर्नि-
शंयदा ॥ तदाकार्यानुरोधेनकार्यं
नाडीप्रचालनम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—शुभ अथवा अशुभ कर्म रात्रि वा दिनमें जो किया जावे तो कार्यके अनुरूपही नाड़ीका चलन करना चाहिये ॥ १०१ ॥

अथइडाफलम्कथ्यते.

स्थिरकर्मण्यलंकारेदूराध्वगमने
तथा ॥ आश्रमेधर्मप्रासादेवस्तू-
नांसंग्रहेऽपिच ॥ १०२ ॥

अर्थ—अब इड़ा नाड़ीमें जो करना चाहिये उस्को कहते हैं ॥ स्थिरकाम, आभूषण, दूर देशमें जाना, आश्रम, धर्म, गृह और वस्तुओंका संग्रह ऐसे कार्योंमें इड़ा नाड़ी शुभ है ॥ १०२ ॥

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठास्तंभदे-
वयोः ॥ यात्रादानेविवाहेचवस्त्रा-
लंकारभूषणे ॥ १०३ ॥

अर्थ—बावड़ी कुवा, तलाव, इत्यादिक स्तंभ और देवताकी प्रतिष्ठामें पुनः यात्रा, दान, बिबाह, बस्त्र, अलंकार, आभूषण इत्यादि कार्योंमें इड़ा नाड़ी शुभ है ॥ १०२ ॥

शांतिकेपौष्टिकेचैव दिव्यौषधि-

रसायने ॥ स्वस्वामिदर्शनेमित्रे-
वाणिज्येकणसंग्रहे ॥ १०४ ॥

अर्थ–शांतिकर्ममें, पुष्टकामनें दिव्य औषधि रसायनमें, अपने स्वामीके मिलनेमें, दोस्तीमें, बाणिज्यकर्ममें धान्य राशिसंग्रहमें इड़ा नाड़ी शुभ होती है॥१०४॥

गृहप्रवेशेसेवायांकृषौचबीजपा-
वने ॥ शुभकर्मणिसंधौचनिर्गमे-
सशुभःशशी ॥ १०५ ॥

अर्थ–गृहप्रबेश, सेवा, और खेतीमें बीजबोना अन्य शुभ कामोंकी संधिमें, मिलापमें चंद्रनाड़ी शुभ है ॥ १०५ ॥

विद्यारंभादिकार्येषुबांधवानांचदर्शने
॥ जन्ममोक्षेचधर्मेचदीक्षायांमंत्रसा-
धने ॥ १०६ ॥ कालविज्ञानसूत्रेतु
चतुष्पादगृहागमे ॥ कालव्याधिचि-
कित्सायांस्वामिसंबोधनेतथा ॥१०७॥

अर्थ–बिद्यारंभ आदि कार्योंमें बंधुजनोंके दर्शनमें, जन्म और छूटनेमें, धर्ममें, दीक्षामें, मंत्रसिद्धिमें ॥ १०६ ॥ कालको जानना, सूत्र (अध्ययन) और चार पैरवाले पशुवोंको घरमें लाना, काल वा व्याधिकी चिकित्सा और स्वामीका बुलाना इन कामोंमेंभी चंद्रनाड़ी शुभ है ॥ १०७ ॥

गजाश्वारोहणेधन्विगजाश्वानांचबं-
धने ॥ परोपकारणेचैवनिधीनांस्था-
पनेनथा ॥ १०८ ॥ गीतवाद्यादिनृ-
त्यादौनृत्यशास्त्रविचारणे ॥ पुरग्रा-
मनिवेशेचतिलकक्षेत्रधारणे ॥१०९॥

अर्थ-हाथी घोड़के चढ़नेमें, धनुषविद्यामें, हाथी और घोड़ोंके बांधनेमें, दूसरेके उपकारमें, खजानाके धरनेमें ॥१०८॥ गाने बाजा बजाने, नाचने इत्यादिमें नृत्यशास्त्रके मननमें, पुर,ग्राम इन्होंके प्रवेशमें, राज्यभिषेकमें, क्षेत्र ग्रहणमें चंद्र (इड़ा) नाड़ी शुभ है ॥ १०९ ॥

आर्तिशोकविषादेचज्वरितेमू-
र्च्छितेऽपिवा ॥ स्वजनस्वामिसं-
बंधेअन्नादेर्दारुसंग्रहे ॥ ११० ॥

अर्थ-दुःख, शोक, विषाद, ज्वर, मूर्छा, अपने जन, अथवा स्वामीका संबंध, धान्यादि वा काष्ठ संग्रह इन कार्योंमे चंद्रनाड़ी शुभ है अर्थात् दुःख, शोक, विषाद, ज्वर, मूर्च्छा आदि नहीं होते ॥११०॥

स्त्रीणांदन्तादिभूषायांवृष्ठेरागमनेत-
था ॥ गुरुपूजाविषादीनांचालनेच-
वरानने ॥ १११ ॥ इडायांसिद्धिदं-
प्रोक्तंयोगाभ्यासादिकर्मच ॥ तत्रा-

पिवर्जयेद्वायुंतेजआकाशमेवच ॥११२॥

अर्थ–हे वरानने! स्त्रियोंके दांत आदिका आभूषण (चूडी कंघी इत्यादि) बर्षाका आना, गुरुपूजा, विष आदिकोंका उतारना ॥ १११ ॥ ये कार्य इड़ा नाड़ीमें सिद्धिके देनेवाले कहे हैं. ओर योगाभ्यासादि कर्मोंमेंभी इड़ा नाड़ी सिद्धिके देनेवाली कही है. तहां इड़ा नाड़ीमेंभी वायु, तेज, और आकाश इन तत्त्वोंको छोड़ देवै ॥ ११२ ॥

सर्वकार्याणिसिद्ध्यंतिदिवारात्रिगतान्यपि ॥ सर्वेषुशुभकार्येषुचंद्रचारःप्रशस्यते ॥ ११३ ॥

अर्थ–रात्रि अथवा दिनमें किये हुये; सब काम सिद्ध होते हैं. और सब शुभ कार्योंमें चंद्रनाड़ी शुभ कही है ॥ ११३ ॥

अथ पिंगलाफलम्कथ्यते.

कठिनक्रूरविद्यानांपठनेपाठनेतथा ॥ स्त्रीसंगवेश्यागमनेमहानौकाधिरोहणे ॥ ११४ ॥ भ्रष्टकार्येसुरापानेवीरमंत्राद्युपासने ॥ विव्हलोत्ध्वंसदेशादौ विषदानेचवैरिणां ॥ ११५॥ शास्त्राभ्यासेचगमनेमृगयापशुविक्रये ॥ इष्टकाकाष्ठपाषाणरत्नघर्षणदारुणे॥११६॥

अर्थ–अब पिंगलाका फल कहते हैं. कठिन वा क्रूर बिद्याओंका पढ़ना तथा पढ़ाना, स्त्रीसंग, वेश्यागमन, महा नौका (जहाज आगबोट आदि) कोंका चढ़ना ॥ ११४ ॥ भ्रष्टकार्य, मदिरापान, बीर मंत्रोंकी उपासना. बिव्हलता, देशका बिध्वंस, शत्रुवोंको बिष देना ॥ ११५ ॥ शास्त्रका अभ्यास, गमन, सिकार खेलना, पशुवोंको बेंचना, ईंट, काष्ठ पाषाण, रत्न, इन्होंको घसना और सब दुष्ट कार्योंमें पिंगला (सूर्य) नाड़ी शुभ है ॥ ११६ ॥

गत्याभ्यासेयंत्रतंत्रेदुर्गपर्वतरोहणे ॥ द्यूतेचौर्येगजाश्वादिरथसाधनवाहने ॥ ११७ ॥ व्यायामेमारणोच्चाटेषट्कर्मादिकसाधने ॥ यक्षिणीयक्षवेतालविषभूतादिनिग्रहे ॥ ११८ ॥ खरोष्ट्रमहिषादीनांगजाश्वारोहणेतथा ॥ नदीजलौघतरणेभेषजेलिपिलेखने ॥ ११९ ॥

अर्थ–चलनेका अभ्यास, यंत्र, तंत्र, किला, वा पर्वतका चढ़ना, जुवां, चोरी, हाथी, घोड़ा, रथ इत्यादि बाहनोंका सिद्ध करना ॥ ११७ ॥ व्यायाम, (दंड कसरत इत्यादि) मारण, उच्चाटन, षट् कर्मोंका साधन, यक्षिणी, यक्ष, बेताल, बिष और भूत आदिकोंका निबारण ॥ ११८ ॥

गदहा, ऊंट, भैंसा आदि हाथी तथा घोड़ेपर चढ़ना, नदी, जलसमूहको उतरना, औषधको लेना और अक्षरोंका लिखना इन कार्योंमें दक्षिण नाड़ी शुभ है ॥ ११९ ॥

मारणेमोहनेस्तंभेविद्वेषोच्चाटनेवशे ॥ प्रेरणेकर्षणेक्षोभेदानेचक्रयविक्रये ॥ ॥ १२० ॥ प्रेताकर्षणविद्वेषशत्रुनिग्रहणेऽपिच ॥ खड्गहस्तेवैरियुद्धेभोगेवाराजदर्शने ॥ भोज्येस्नानेव्यवहारेदीप्तकार्येरविःशुभः ॥ १२१ ॥

अर्थ–मारण, मोहन, स्तंभन, द्वेष, उच्चाटन, वशीकरण, प्रेरणा, आकर्षण, क्षोभ, दान, खरीदना वा बेंचना ॥ १२० ॥ प्रेतको बुलाना, शत्रुको दंड, तलवार हाथमें ग्रहणकर दुसमनसे युद्ध करना, अनेक पदार्थोंका भोग, वा राजदर्शन, भोजन, स्नान, व्यवहार, और तेजस्वी कार्योंमेंभी सूर्य अर्थात् पिंगला नाड़ी शुभ है ॥ १२१ ॥

भुक्तमार्गेणमंदाग्नौस्त्रीणांवश्यादिकर्मणि ॥ शयनंसूर्यबाहेनकर्तव्यंसर्वदाबुधैः ॥ १२२ ॥ क्रूराणिसर्वकर्माणिचराणिविविधानिच ॥ तानिसि-

द्वयंतिसूर्येणनात्रकार्याविचारणा ॥१२३॥

अर्थ–भोजनसे उत्पन्न हुई मंदाग्निमें, स्त्रियोंके बशीकरण आदि कर्ममें, शयनमें, ज्ञानवान् जनोंने हमेशौं सूर्यस्वर चलनेसे कर्म करना ॥ १२२ ॥ संपूर्ण क्रूरकर्म और अनेक प्रकारके चरकर्म ये संपूर्ण सूर्यस्वर चलनेमें सिद्ध होते हैं. इसमें कुछ संशय नहीं करना ॥ १२३ ॥

अथ सुषुम्नाफलम्कथ्यते.

क्षणंवामेक्षणंदक्षेयदावहतिमारुतः ॥ सुषुम्नासाचविज्ञेयासर्वकार्यहरास्मृता ॥ १२४ ॥

अर्थ–अब सुषुम्नाका फल कहते हैं. जो क्षणमें बायां और क्षणमें दहिना स्वर चले उस्को सुषुम्ना नाड़ी जाननी यह सुषुम्ना सब कार्योंके नाश करनेवाली कही है ॥ १२४ ॥

तस्यांनाड्यांस्थितोवन्हिर्ज्वलतेकालरूपकः ॥ विषवत्तंविजानीयात्सर्वकार्यविनाशनम् ॥ १२५ ॥

अर्थ–तिस सुषुम्ना नाड़ीमें कालरुपी अग्नि प्रज्वलित है तिस्को संपूर्ण कामोंके बिनाशमें बिषकी समान जानना ॥ १२५ ॥

यदानुक्रममुल्लंघ्ययस्यनाडीद्वयंवहेत् ॥

तदातस्यविजानीयादशुभंनात्रसंश-
यः ॥ १२६ ॥ क्षणंवामेक्षणंदक्षेवि-
षमंभावमादिशेत् ॥ विपरीतंफलंज्ञे-
यंज्ञातव्यंचवरानने ॥ १२७ ॥

अर्थ—जब जिस मनुष्यकी दोनों नाड़ी यथा क्रमको उल्लंघन करके चलती हैं; तब तिस्को अशुभ जानना. इसमें शक नहीं ॥१२६॥ हे वरानने! क्षण-भर बायां और क्षणभर दहिना जो स्वर चलै तो यह विषमभाव कहा है. उस्को बिपरीत फल जानना ॥ १२७ ॥

उभयोरेवसंचारंविषवंतंविदुर्बुधाः ॥
नकुर्यात्क्रूरसौम्यानितत्सर्वंविफलं
भवेत् ॥ १२८ ॥

अर्थ—ज्ञानवान् जन दोनों नाड़ियोंके चलनेंको विषयुक्त कहते हैं. तहां क्रूर वा सौम्य कार्य नहीं करना; क्यों कि किये हुयेभी सब कार्य निष्फल होते हैं ॥ १२८ ॥

जीवितेमरणेप्रश्नेलाभालाभेजयाजये ॥
विषमेविपरीतेचसंस्मरेज्जगदीश्वरं ॥
॥१२९॥ ईश्वरेचिंतितेकार्यंयोगाभ्यासा-
दिकर्मच ॥ अन्यत्तत्रनकर्त्तव्यंजयलाभ
सुखैषिभिः ॥ १३० ॥

अर्थ–जीना, मरना, प्रश्न, प्राप्ति, अप्राप्ति, (नुकसान) जय, पराजय, ये कार्य विषम वा विपरीत स्वर चलनेमें नहीं करना एक परमात्माहीको स्मरण करना चाहिये ॥ १२९॥ ईश्वरस्मरणके उपरांत योगाभ्यास आदि कर्म करके जय, लाभ, सुख इन्होंकी इच्छावाले पुरुषोंने तहां दूसरे कार्य नहीं करनें॥१३०॥

सूर्येणवहमानायांसुषुम्नयांमुहुर्मुहुः ॥ शापंदद्याद्वरंदद्यात्सर्वथैव तदन्यथा ॥ १३१ ॥

अर्थ–सूर्यस्वर संयुक्त जब सुषुम्ना नाड़ी बारंबार चलती होय; तब शाप अथवा बर दिया हुवा सब प्रकारसे निरर्थकही होता है ॥ १३१ ॥

नाडीसंक्रमणेकालेतत्वसंगमनेपिच ॥ शुभंकिंचिन्नकर्त्तव्यंपुण्यदानानिकोटिधा ॥ १३२ ॥

अर्थ–नाड़ियोंके चलनेंके समय और तत्वोंके चलनेमेंभी अर्थात् अदल बदल होनेके समय कुछभी शुभकार्य न करना. पुण्य दानादिकोंको करना दूसरे शुभकार्य नहीं ॥ १३२ ॥

विषमस्योदयोयत्रमनसाऽपिन चिंतयेत् ॥ यात्राहानिकरीतस्य मृत्युःक्लेशोनसंशयः ॥ १३३ ॥

अर्थ–जिस समय बिषम स्वर चलता हो उस समय मनसेभी किसी कार्यको विचार न करै क्योंकि तिस मनुष्यको बिषमस्वरकी यात्रा हानि करनेवालीहै. मृत्यु वा क्लेशभी होताहै. इसमें संशय नहीं है॥१३३॥

पुरोवामोर्ध्वतश्चंद्रोदक्षाधःपृष्ठ-
तोरविः ॥ पूर्णरिक्तविवेकोयंज्ञा-
तव्योदैशिकैःसदा ॥ १३४ ॥

अर्थ–चंद्रस्वरका बेग सामनें अथवा बायें तर्फ और ऊपरको होवे तो यह पूर्ण बिबेक है उस्से उलटा चलनेमें बिद्वान् जनोंने हमेशैं खाली जानना और दहिनी तर्फ, नीचेको, पीछेको, सूर्यका स्वर पूर्ण कहा है।१३४।

ऊर्ध्ववामाग्रतोदूतोज्ञेयोवामप-
थिस्थितः ॥ पृष्ठदक्षेतथाऽध-
स्तात्सूर्यवाहागतःशुभः ॥ १३५ ॥

अर्थ–चंद्रस्वर चलनेंके बखत ऊपरकी तर्फ वा बायीं तर्फ और सामने बैठाहुवा दूत शुभ है. सूर्यस्वर चलनेंके बखत पीठके पिछाड़ी दहिनें अथवा नीचेको बैठा हुवा दूत शुभ है ॥ १३५ ॥

अनादिविषमःसंधिनिराहारोनिराकु-
लः ॥ परेसूक्ष्मेविलीयेतसासंध्यास-
द्भिरुच्यते ॥१३६॥ नवेदंवेदइत्या-
हुर्वेदोवेदोनविद्यते ॥ परात्मावेद्यते-

येनसवेदोवेदउच्यते ॥ १३७ ॥ नसंध्यासंधिरित्याहुःसंध्यासंधिर्निगद्यते ॥ विषमःसंधिगःप्राणःससंधिस्संधिरुच्यते ॥ १३८ ॥ इति नाड़ीफलानि ॥

अर्थ–अनादि, निराहार, निराकुल ऐसी जो बिषम संधिहै (सुषुम्ना) सो सूक्ष्मतत्त्वमें लीन हो जावे तब सज्जनोंनें उस्को संध्या कही है ॥१३६॥ प्रसिद्ध बेदको बेद नहीं कहते कारण कि तिसमें बेद तत्त्व नहीं है. जिस योगसे परमात्मा जाना जाय उसहीको साधुजन बेद कहते हैं ॥ १३७ ॥ मनुष्य दिन रात्रिके बीच जो संधि है. उस्को संध्या कहते हैं तिस संध्याको साधुजन संध्या नहीं कहते; वे तो बिषम संधिगत (सुषुम्ना नाड़ीमे) रहनेवाले प्राणको संधि कहते हैं ॥ १३८ ॥ यहांसे नाड़ियोंके फल पूरे हुवे ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ देवदेवमहादेव सर्वसंसारतारक ॥ स्थितंत्वदीय हृदयेरहस्यंवदमेप्रभो ॥ १३९॥

अर्थ–श्रीदेवी (पार्बती) नाड़ियोंका फल सुनकर फिर शंकरसे पूछती है कि हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे सर्व संसार तारक! (सब संसारको तारने-

वाले) हे प्रभो! आपके हृदयमें स्थित जो गुप्तबस्तु है वो मेरेसे कहो ? ॥ १३९ ॥

ईश्वरउवाच ॥ स्वरज्ञानरहस्या-
त्तुनकाचिन्नेष्टदेवता ॥ स्वरज्ञान-
रतोयोगीसयोगीपरमोमतः ॥१४०॥

अर्थ—शंकर बोले, हे पार्बती! अत्यंतगोप्य जो स्वरज्ञान उस्से शिवाय दूसरा इष्ट देवता नहीं है स्वरज्ञानमें लगा हुवा योगी श्रेष्ठ योगी है ॥ १४० ॥

पंचतत्वाद्भवेत्सृष्टिस्तत्वेतत्वंप्रली-
यते ॥ पंचतत्वंपरंतत्वंतत्वातीतं
निरंजनम् ॥ १४१ ॥

अर्थ—पांच तत्त्वोंसे सृष्टि उत्पन्न होती है. और तत्त्वोंमें तत्त्व लय होते हैं. इसीलिये पांच तत्त्वें श्रेष्ठ हैं. और निर्गुण जो परमात्मा सो तत्त्वोंसे अलग है ॥ १४१ ॥

तत्वानांनामविज्ञेयंसिद्धियोगेन
योगिनां ॥ भूतानांदुष्टचिन्हानि
जानातीहस्वरोत्तमः ॥ १४२ ॥

अर्थ—इसीसे योगियोंको सिद्धियोग करके तत्त्वोंका नाम जानना योग्य है. इस लोकमें उत्तमस्वर बुद्धिमान् मनुष्य प्राणियोंके दुष्ट चिन्ह जानता है ॥१४२॥

पृथिव्यापस्तथातेजोवायुराकाश-

मेवच ॥ पंचभूतात्मकंविश्वंयो
जानातिसपूजितः ॥ १४३ ॥

अर्थ–पृथ्वी, जल, अग्नि, बायु, आकाश इन पांच तत्त्वोंका आत्मभूत संसारको जो जानता है वह पूजित है ॥ १४३ ॥

सर्वलोकस्थजीवानांनदेहोभिन्नत-
त्वकः ॥ भूलोकात्सत्यपर्यंतंनाडी-
भेदःपृथक्पृथक् ॥ १४४ ॥

अर्थ–भूलोकसे आदिलेके, सत्यलोक पर्यंत संपूर्ण लोकके जीवोंका देह तत्त्वोंसे भिन्न नहीं हैं अर्थात् सबहीका देह पंचतत्वात्मक है परंतु नाड़ीका भेद भिन्न भिन्न है ॥ १४४ ॥

वामेवादक्षिणेवाऽपिउदयाःपंच
कीर्तिताः ॥ अष्टधातत्वविज्ञानंशृ-
णुवक्ष्यामिसुंदरि ॥ १४५ ॥

अर्थ–हे सुंदरि ! बायें वा दहिने स्वरमें पांचतत्त्व उदय कहे हैं. तिन तत्त्वोंका आठ प्रकारसे विज्ञान सुनो! ॥ १४५ ॥

प्रथमेतत्वसंख्यानंद्वितीयेश्वाससंध-
यः ॥ तृतीयेस्वरचिन्हानिचतुर्थेस्था-
नमेवच ॥ १४६ ॥ पंचमेतस्यवर्णा-
श्चषष्ठेतुप्राणएवच ॥ सप्तमेस्वाद-

संयुक्ताअष्ठमेगतिलक्षणम् ॥१४७॥
एवमष्टविधंप्राणविषुवंतंचराचरम् ॥
स्वरात्परतरंदेविनान्यथात्वंबुजे-
क्षणे ॥ १४८ ॥

अर्थ–पहलेमें तत्त्वोंकी संख्या, दूसरेमें श्वाससंधियां तीसरेमें स्वरोंके चिन्ह और चौथेमें स्थान, ॥ १४६ ॥ पांचवेंमें तत्त्वोंके रंग, छठेमें प्राण, सातवेंमें स्वाद-संयुक्त, आठवेंमें गतिके लक्षण, ॥ १४७ ॥ हे देवि! ऐसे आठ प्रकारसे प्राण चराचर संसारमें व्याप्त है. हे अंबुजेक्षणे! (कमल समान नेत्रवाली) स्वरज्ञानसे श्रेष्ठ और कोई दूसरा नहीं ॥ १४८ ॥

निरीक्षितव्यंयत्नेनसदाप्रत्यूषका-
लतः ॥ कालस्यवंचनार्थायकर्म
कुर्वंतियोगिनः ॥ १४९ ॥

अर्थ–प्रातःकालसे लेके हमेशैं यत्नसे स्वर देखे क्यों कि योगी लोग कालको दूर करनेकेलिये स्वरकर्म करते हैं ॥ १४९ ॥

श्रुत्योरंगुष्ठकौमध्यांगुल्यौनासा-
पुटद्वये ॥ वदनप्रांतकेचान्यांगु-
लीर्दद्याच्चनेत्रयोः ॥ १५० ॥

अर्थ–दोनों कानोंमें दोनों अंगूठे लगावे और दोनों नासा पुठोंमें दो बीचकी अंगुली लगावे ओठोके

बीचमें अनामिकाको लगावे अन्य दो अँगुलियोंको आंखोंमें लगावे ॥ १५० ॥

अस्यांतस्तुपृथिव्यादितत्वज्ञानं
भवेत्क्रमात् ॥ पीतश्वेतारुणश्या
मैर्बिंदुभिर्निरुपाधिकम् ॥ १५१ ॥

अर्थ-इसको षण्मुखी मुद्रा योगी कहते हैं. फिर षण्मुखी मुद्राके बीचमें क्रमसे पृथ्वी आदि तत्वोंका ज्ञान होता है, उपाधि बिगर पृथ्वी पीतबर्ण, जल श्वेतवर्ण, तेज लाल रंग, बायु काला बिंदुरूप रंग, पृथ्वी आदिकों का दीखता है और आकाशका चित्र बिचित्र बर्ण दीखता है ॥ १५१ ॥

दर्पणेनसमालोक्यतत्रश्वासंविनि-
क्षिपेत् ॥ आकारैस्तुविजानीया-
त्तत्वभेदंविचक्षणः ॥ १५२ ॥

अर्थ-शीसा करके मुखको देख, तहां श्वासको निकाले वहां जैसा रूप दिखाई पड़े उसहीसे बिचक्षण मनुष्य पृथिव्यादि तत्त्वोंका भेद जानै ॥ १५२ ॥

चतुरस्रंचार्धचंद्रंत्रिकोणंवर्तुलं
स्मृतं ॥ बिंदुभिस्तुनभोज्ञेयमा-
कारैस्तत्वलक्षणम् ॥ १५३ ॥

अर्थ-चतुष्कोण, अर्धचंद्र, त्रिकोण, गोलाकार, बिंदु इन आकारोंसे यथाक्रम पृथ्वी, जल, तेज, वायु,

आकाश, इन्होंके तत्वका लक्षण जानना ॥ १५३ ॥

मध्येपृथ्वीह्यधश्चापश्चोर्ध्ववहति चानलः ॥ तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभोवहतिसंक्रमे ॥ १५४ ॥

अर्थ—बीचमें पृथ्वी और नीचे जल और ऊपरको अग्निस्वर चलता है और बायुका तिरछा स्वर चलता है. और दोनों स्वर मिलेभये चलते हों तो आकाशका स्वर जानना ॥ १५४ ॥

आपःश्वेताःक्षितिःपीतारक्तवर्णो हुताशनः ॥ मारुतोनीलजीमूत आकाशःसर्ववर्णकः ॥ १५५ ॥

अर्थ—जल शुभ्रबर्ण, पृथ्वी पीतबर्णवाली, अग्नि रक्तबर्ण, बायुका श्याम मेघके सदृश बर्ण और आकाशका बिचित्रबर्ण ऐसा जानना ॥ १५५ ॥

अब स्थानपरसे तत्वज्ञान कहते हैं.

स्कंधद्वयेस्थितोवन्हिर्नाभिमूलेप्रभंजनः ॥ जानुदेशेक्षितिस्तोयंपादांतेमस्तकेनभः ॥ १५६ ॥

अर्थ—अग्नि दोनों कांधोंके ऊपर स्थित हैं. बायु नाभिके जड़मे स्थित हैं. पृथ्वी जानुओंकी जगामें स्थित है. पैरोंके अंतमे जल स्थित है. और आकाश मस्तकमें स्थित है ॥ १५६ ॥

अब स्वादपरसे तत्वज्ञान कहते हैं.

माहेयंमधुरंस्वादुकषायंजलमेवच॥
तीक्ष्णंतेजःसमीरोऽम्लआकाशंक-
टुकंतथा ॥ १५७ ॥

अर्थ–पृथ्वी तत्वका मीठा स्वाद है. जलमें कसेलापना है. अग्नि तत्व तीक्ष्ण है. बायुतत्व खट्टा है. आकाश कडुवा है. मिर्च इत्यादिकोंके समान स्वादवाला है ॥ १५७ ॥

अब गतिपरसे तत्वज्ञान कहते हैं.

अष्टांगुलंवहेद्वायुरनलश्चतुरंगुल-
म् ॥ द्वादशांगुलिमाहेयंवारुणंषो-
डशांगुलम् ॥ १५८ ॥

अर्थ–बायु तत्वका स्वर आठ अंगुल चलता है. अग्नि तत्वका स्वर चार अंगुल चलता है. और पृथ्वी तत्वका स्वर बारह अंगुल चलता है. जलका स्वर सोलह अंगुल चलता है ॥ १५८ ॥

ऊर्ध्वंमृत्युरधःशांतिस्तिर्यगुच्चाटनं
तथा ॥ मध्येस्तंभंविजानीयान्नभः
सर्वत्रमध्यमम् ॥ १५९ ॥

अथ–अग्नि तत्व ऊपरको चलै तो मृत्यु कारक है. जल तत्त्व नीचेको चलै तो शांति कर्मोंका उपयोगी है. बायु तत्व तिरछा चलै तो इसमें उच्चाटना-

दिक करै; पृथ्वी तत्व बीचमें चलै तो रोंकनेके कार्य करै और आकाश तत्व सब तर्फसे मध्यम है. ऐसा जानना. इसमें कोई काम नहीं करना ॥ १५९ ॥

पृथिव्यांस्थिरकर्माणिचरकर्माणि
वारुणे ॥ तेजसिक्रूरकर्माणिमार-
णोच्चाटनेऽनिले ॥ १६० ॥

अर्थ–पृथ्वी तत्वमें स्थिर कर्म, जल तत्वमें शीघ्रताके कार्य, अग्नि तत्वमें दुष्ट कर्म करै, बायु तत्वमें मारण उच्चाटन आदि कर्म करै तो सिद्ध होते हैं॥१६०॥

व्योम्निकिंचिन्नकर्त्तव्यमभ्यसेद्यो-
गसेवनम् ॥ शून्यतासर्वकार्येषु
नात्रकार्याविचारणा ॥ १६१ ॥

अर्थ–आकाश तत्वका स्वर चलता हो तो कुछभी कार्य न करै केवल योग मात्रका अभ्यास करै. क्यों कि इस आकाश तत्वमें किये हुये कार्योंका नाश होता है. इसमें विचार नहीं करना ॥ १६१ ॥

पृथ्वीजलभ्यांसिद्धिःस्यान्मृत्युर्व-
न्हौक्षयोनिले ॥ नभसोनिष्फलंस
र्वंज्ञातव्यंतत्ववेदिभिः ॥ १६२ ॥

अर्थ–पृथ्वी और जल दोनों तत्वें सिद्धिको देते हैं. अग्नि तत्व मृत्युकारक है. बायुतत्व क्षय करनेवाला है. आकाश तत्वमें कोईभी कार्य करै तो सब निष्फल

होता है. ऐसा तत्वके जाननेवाले लोगोंने जानना ॥ १६२ ॥

चिरलाभःक्षितेर्ज्ञेयस्तत्क्षणेतोय-
तत्वतः ॥ हानिःस्याद्वन्हिवाता-
भ्यांनभसोनिष्फलंभवेत् ॥ १६३ ॥

अर्थ–पृथ्वी तत्व चलता होवे तो चिरकालमें प्राप्ति होवे, उदक तत्व उसीक्षण सिद्धिको देता है, बन्हि वा बायु तत्वमें हानि होती है. आकाशतत्वमें सर्व निष्फल होता है ॥ १६३ ॥

पीतःशनैर्मध्यवाहीहनुर्यावद्गुरु-
ध्वनिः ॥ कवोष्णःपार्थिवोवायु-
स्थिरकार्यप्रसाधकः ॥ १६४ ॥

अर्थ–पीतवर्ण, धीरा तथा मध्यम चलनेवाला ठोड़ीतक तथा बड़ा शब्द करनेवाला, कुछ गरम ऐसा पृथ्वी संबंधी स्वर स्थिर कार्यको सिद्ध करनेवाला है ॥ १६४ ॥

अधोवाहीगुरुध्वानःशीघ्रगःशीत
लःस्थितः ॥ यःषोडशांगुलोवायुः
सआपःशुभकर्मकृत् ॥ १६५ ॥

अर्थ–नीचेको चलनेंवाला, बड़ा शब्द, जल्दी चलनेवाला, शीतल, श्वेतरंगबाला, और सोलह अंगुल प्रमाण ऐसा जो जलतत्वका स्वर है सो शुभ कर्मोंको करनेवाला है ॥ १६५ ॥

आवर्त्तगश्चात्युष्णश्चशोणाभश्च-
तुरंगुलः ॥ ऊर्ध्ववाहीचयःक्रूरक-
र्मकारीसतैजसः ॥ १६६ ॥

अर्थ–जो चक्करकी माफिक चलनेवाला, जास्ती गर्म, लालबर्ण, चार अंगुल ऊपरको चलनेवाला, क्रूर कर्मोंको करनेवाला है वह स्वर तैजस अर्थात् अग्नितत्वका है ॥ १६६ ॥

उष्णःशीतःकृष्णवर्णस्तिर्यग्गा-
म्यष्टकांगुलः ॥ वायुःपवनसंज्ञ-
स्तुचरकर्मप्रसाधकः ॥ १६७ ॥

अर्थ–गरम शीत, कृष्णबर्ण, आठ अंगुल तिरछा चलनेवाला ऐसा यह बायुतत्वका श्वास चर कामों को सिद्ध करनेवाला है ॥ १६७ ॥

यःसमीरःसमरसःसर्वतत्त्वगुणा-
वहः ॥ आंबरंतंविजानीयाद्यो-
गिनांयोगदायकम् ॥ १६८ ॥

अर्थ–जो बायु बराबर रस हो और सब तत्वोंके मिश्रित गुणको बहता हो वह आकाशसंबंधी श्वास है योगियोंको योगदायक जानना ॥ १६८ ॥

पीतवर्णंचतुष्कोणंमधुरंमध्यमा-
श्रितं ॥ भोगदंपार्थिवंतत्त्वंप्रवा-
हेद्वादशांगुलम् ॥ १६९ ॥

अर्थ—पीलारंग, आकृति चतुष्कोण, मधुर, बीचमें चलनेवाला, बारह अंगुल प्रमाण ऐसा पृथ्वीतत्वका श्वास अनेक भोगोंको देनेवाला है ॥१६९॥

श्वेतमर्धेंदुसंकाशंस्वादुकाषायमार्द्रकं ॥ लाभकृद्वारुणंतत्वंप्रवाहेषोडशांगुलम् ॥ १७० ॥

अर्थ—श्वेतबर्ण, अर्ध चंद्रसमान, कसैला, गीला, सोलह अंगुलतक चलनेवाला, ऐसा जलतत्वका श्वास लाभ करता है ॥ १७० ॥

रक्तंत्रिकोणंतीक्ष्णंचऊर्ध्वभागप्रवाहकं ॥ दीप्तंचतैजसंतत्वंप्रवाहेच्तुरंगुलम् ॥ १७१ ॥

अर्थ—रक्तवर्ण, त्रिकोण तीक्षण, ऊपर प्रबाह करनेवाला, देदीप्यमान, और चार अंगुल प्रबाहवाला ऐसा तेजस (अग्नि) तत्व जानना ॥ १७१ ॥

नीलंचवर्तुलाकारंस्वाद्वाम्लंतिर्यगाश्रितम् ॥ चपलंमारुतंतत्वंप्रवाहेऽष्टांगुलंस्मृतम् ॥ १७२ ॥

अर्थ—नीलरंग गोलास्वरूप, स्वाद खट्टा, तिरछा चलनेवाला, चपल, आठ अंगुल प्रबाहवाला ऐसा बायुतत्व कहा है ॥ १७२ ॥

वर्णाकारेस्वादवाहेअव्यक्तंसर्वगा-

मिनं ॥ मोक्षदंनाभसंतत्त्वंसर्वका-
र्येषुनिष्फलम् ॥ १७३ ॥

अर्थ–वर्ण, स्वरूप, स्वाद, चलनेकी गति ये प्रकट न हों ऐसा आकाशतत्व सर्व कार्योंका निष्फल करनेवाला, मोक्षका दाता है ॥ १७३ ॥

पृथ्वीजलेशुभेतत्त्वेतेजोमिश्रफ-
लोदयम् ॥ हानिमृत्युकरौपुंसा-
मशुभौव्योममारुतौ ॥ १७४ ॥

अर्थ–पृथ्वी, जल ये तत्व शुभ हैं तेजका मिश्र (मध्यम) फल होता है बायु आकाश ये तत्व पुरुषोंको हानि, मृत्यु करनेवाले, अशुभ-हैं ॥ १७४ ॥

आपूर्वपश्चिमेपृथ्वीतेजश्चदक्षि-
णेतथा ॥ वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयो-
मध्येकोणगतंनभः ॥ १७५ ॥

अर्थ–पूर्वसे लेके पश्चिमतक पृथ्वीतत्व दक्षिण दिशामें अग्नितत्व उत्तर दिशामें बायुतत्व, मध्य कोणमें आकाशतत्व ये तत्व दिशाओंमें व्याप्त होके रहते हैं ॥ १७५ ॥

चंद्रेपृथ्वीजलेस्यातांसूर्येऽग्निर्वाय-
दाभवेत् ॥ तदासिद्धिर्नसंदेहःसौ-
म्यासौम्येषुकर्मसु ॥ १७६ ॥

अर्थ–चंद्रमाके स्वरमें पृथ्वी वा जलतत्व, और सूर्यस्वरमें अग्नितत्व चलता हो तो सौम्य, क्रूर कर्मोंसे सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं ॥ १७६ ॥

लाभःपृथ्वीकृतोऽह्निस्यान्निशायां-
लाभकृज्जलं ॥ वन्हौमृत्युःक्षयो-
वायुर्नभःस्थानंदहेत्कचित् ॥१७७॥

अर्थ–पृथ्वीतत्व बहै तो दिनमें लाभ होवे; जलतत्व बहै तो रात्रिमें लाभ होवे; अग्नितत्वमें मृत्यु, बायुतत्वमें नाश, आकाशतत्वमें कभी स्थानका दाहभी होता है ॥ १७७ ॥

जीवितव्यजयेलाभेकृष्यांचधन-
कर्मणि ॥ मंत्रार्थेयुद्धप्रश्नेचगम-
नागमनेतथा ॥ १७८ ॥

अर्थ–जीवन, जय, लाभ, खेतीकाकर्म, द्रव्यकर्म मंत्रका अर्थ, युद्ध, प्रश्न, गमन, आगमन इत्यादि कर्मोंमें पृथ्वीतत्व शुभ है ॥ १७८ ॥

आयातिवारुणेतत्वेशत्रुरस्तिशु
भंक्षितौ ॥ प्रयातिवायुतोऽन्यत्रहा-
निमृत्यूनभोऽनले ॥ १७९ ॥

अर्थ–शत्रु आया ऐसा पृथ्वीतत्वमें जानै, जलतत्व शुभकारक है, वायुतत्वमें शत्रु आया पर दुसरी जगंह जाता है, आकाश वा अग्नितत्वमें शत्रु आया तो

हानि वा मृत्यु दायक है ॥ १७९ ॥

पृथिव्यांमूलचिंतास्याज्जीवस्य-
जलवातयोः ॥ तेजसाधातुचिंता-
स्याच्छून्यमाकाशतोवदेत् ॥१८०॥

अर्थ--जो कोई प्रच्छक पूंछने आया हो तो उस्के मनका विचार तत्वोंसे जानै. पृथ्वीतत्वमें मूल चिंता अर्थात् (वृक्षादिकोंका विचार) है, जल और वायु-तत्वमें जीवचिंता, तेज तत्व चलता होतो धातुचिंता, आकाशतत्व चलता होतो शून्य कहै अर्थात् कुछभी चिंता नहीं ॥ १८० ॥

पृथिव्यांबहुपादाःस्युर्द्विपदस्तो-
यवायुतः तेजस्येवचतुष्पादो-
नभसापादवर्जितः ॥ १८१ ॥

अर्थ--पृथ्वीतत्व चलता हो तो बहु पैरवालोंकी चिंता, जल और बायुतत्व चलता हो तो दो पैरवा-लोंकी चिंता, अग्नितत्वमें चार पैर वालोंकी चिंता, आकाश तत्वमें पादरहितकी चिंता अर्थात् कोई चिंता नहीं ॥ १८१ ॥

कुजोवन्हीरविःपृथ्वीसौरिरापःप्र-
कीर्तितः ॥ वायुस्थानस्थितोराहु-
र्दक्षरंध्रप्रवाहकः ॥ १८२ ॥

अर्थ--दाहिने स्वरके चलनेमें अग्नितत्वमें मंगल,

पृथ्वी तत्वमें सूर्य, जलतत्वमें शनैश्चर, बायु तत्वमें राहु ॥ १८२ ॥

जलंचंद्रोबुधःपृथ्वीगुरुर्वातःसि-
तोऽनलः ॥ वामनाड्यांस्थिताः
सर्वेसर्वकार्येषुनिश्चिताः ॥१८३॥

अर्थ--जलतत्व चंद्रमा, पृथ्वीतत्व, बुध, वायुतत्व वृहस्पति, अग्नितत्व शुक्र ये सब ग्रह बामनाड़ी (इड़ा) में स्थित सब कार्योंमें शुभ हैं ॥ १८३ ॥

पृथ्वीबुधोजलादिंदुःशुक्रोवन्हीर-
विःकुजः ॥ वायुराहुःशनीव्योम-
गुरुरेवप्रकीर्तितः ॥ १८४ ॥

अर्थ--पृथ्वीतत्व बुध, जलतत्वसे चंद्र शुक्र, अग्नितत्वसे सूर्य मंगल, बायुतत्वसे राहु, शनि, आकाशतत्वसे वृहस्पति ऐसा कहते हैं ॥ १८४ ॥

प्रवासप्रश्नआदित्येयदिराहुर्ग-
तोऽनिले॥तदासौचलितोज्ञेयः
स्थानांतरमपेक्षते ॥ १८५ ॥

अर्थ--जिस समय सूर्यस्वर चलताहो उस समय किसीने परदेशसे आगमन विषयक प्रश्न किया. उस समय श्वासमें राहुग्रह होवे तो वह पुरुष प्रथम स्थानसे चलदियाहै. और दूसरे स्थानको इच्छा करता है ऐसा जानना ॥ १८५ ॥

आयातिवारुणेतत्वेतत्रवास्तिशु-
भंक्षितौ ॥प्रवासीपवनेऽन्यत्रमृ-
त्युरेवानलेभवेत् ॥ १८६ ॥

अर्थ—जलतत्व चलनेके बखत प्रश्न करै तो परदेशी जल्दही आवे. पृथ्वीतत्वमें उसी जगंह आनंदसे है. वायुतत्वमें परदेशी उस जगंहको छोंड़ दूसरी जगंह गया. अग्नितत्वमें मृत्यु हुई ऐसा जानना ॥ १८६ ॥

पार्थिवेमूलविज्ञानंशुभंकार्यंजले
तथा॥ आग्नेयेधातुविज्ञानंव्यो-
म्निशून्यंविनिर्दिशेत् ॥१८७॥

अर्थ—पृथ्वीतत्वमें मूल (वृक्ष) विज्ञान, जलतत्व में शुभ कार्य, अग्नितत्वमें धातु ज्ञान, आकाशतत्वमें शून्य कुछभी विचार नहीं ॥ १८७ ॥

तुष्टिपुष्टीरतिःक्रीडाजयहर्षौधरा-
जले ॥ तेजोवाय्वोश्चसुप्ताक्षो-
ज्वरकंपःप्रवासिनः ॥ १८८ ॥

अर्थ—पृथ्वी वा जलतत्वमें जो कोई परदेश विषयक प्रश्न करै तो प्रबासी संतोष, पुष्टता, प्राप्ति, क्रीड़ा, जय, हर्ष इत्यादिकोंसे युक्त है; तेज अथवा वायुतत्वमें प्रश्न करै तो परदेशी स्वस्ती, ज्वरित, कंपयुक्त ऐसा जानना ॥ १८८ ॥

गतायुर्मृत्युराकाशेतत्वस्थानेप्रकी-

र्त्तिताः ॥ द्वादशैताःप्रयत्नेनज्ञात-
व्यादेशिकैःसदा ॥ १८९ ॥

अर्थ—आकाशतत्वमें प्रश्न किया हो तो आयुरहित अर्थात् विदेशीकी मृत्यु कहनी. तत्वोंके जगंहपर कहे ये बारह प्रश्न तत्वके देश कालको समझने वालोंने यत्नसे हमेशैं जानने ॥ १८९ ॥

पूर्वायांपश्चिमेयाम्येउत्तरस्यांयथा-
क्रमम् ॥ पृथिव्यादीनिभूतानिब-
लिष्ठानिविनिर्दिशेत् ॥ १९० ॥

अर्थ—पृथ्वी, अप, तेज, बायु ये तत्वें पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर इन दिशाओंमें यथा क्रमसे बलिष्ठ जानने ॥ १९० ॥

पृथिव्यापस्तथातेजोवायुराकाश-
मेवच॥ पंचभूतात्मकोदेहोज्ञात-
व्यश्चवरानने ॥ १९१ ॥

अर्थ—हे वरानने! पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकश इन पांचतत्वोंसे यह देह उत्पन्न भया. इसीसे पंचभूतात्मक है ऐसा जानना ॥ १९१ ॥

अस्थिमांसंत्वचानाडीरोमचैवतु
पंचमम्॥ पृथ्वीपंचगुणाप्रोक्ताब्र-
ह्मज्ञानेनभाषितम् ॥ १९२ ॥

अर्थ—हाड़, मांस, त्वचा, नाड़ी और पांचवां

रोम ऐसे पांचगुणोंकी पृथ्वी कही है. यह वेदांत शास्त्रने कहा है ॥ १९२ ॥

शुक्रशोणितमज्जाश्चमूत्रंलालाचपं-चमम् ॥ आपःपंचगुणाःप्रोक्ताब्र-ह्मज्ञानेनभाषितम् ॥ १९३ ॥

अर्थ—वीर्य, रक्त, मज्जा, मूत्र और पांचवां लाल ये पांचगुण जलके हैं ऐसा वेदांतशास्त्रनें कहा है।१९३॥

क्षुधातृषातथानिद्राकांतिरालस्य-मेवच ॥ तेजःपंचगुणंप्रोक्तंब्रह्म-ज्ञानेनभाषितम् ॥ १९४ ॥

अर्थ—क्षुधा, तृषा, निद्रा, कांति, आलस्य ये पांच गुण तेजके होते हैं ऐसा वेदांतशास्त्रने कहा है ॥ १९४ ॥

धावनंचलनंग्रंथःसंकोचनप्रसा-रणे ॥ वायोःपंचगुणाःप्रोक्ताब्र-ह्मज्ञानेनभाषितम् ॥ १९५ ॥

अर्थ—दौड़ना, चलना, ग्रंथि होना, सिकुड़ना, फैलना ये पांचगुण बायुके हैं ऐसा वेदांतशास्त्रने कहा है ॥ १९५ ॥

रागद्वेषौतथालज्जाभयंमोहश्चपं-चम् ॥ नभःपंचगुणंप्रोक्तंब्रह्म-ज्ञानेनभाषितम् ॥ १९६ ॥

अर्थ-प्रीति, द्वेष, लज्जा, भय, और पांचवा मोह ये पांचगुण आकाशके हैं ऐसा वेदांतशास्त्रनें कहा है ॥ १९६ ॥

पृथ्व्याःपलानिपंचाशच्चत्वारिंशत्त-
थांभसः ॥ अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विं-
शतिर्नभसोदश ॥ १९७ ॥

अर्थ-देहमें पृथ्वी ५० पल, जल, ४० पल, अग्नि ३० पल, बायु २० पल, आकाश १० पल है ऐसा जानना ॥ १९७ ॥

पृथिव्यांचिरकालेनलाभश्चापःक्षणा-
द्भवेत् ॥ जायतेपवनेस्वल्पःसिद्धोऽ-
प्यग्नौविनश्यति ॥ १९८ ॥

अर्थ-पृथ्वीतत्वमें बहुत कालमें लाभ होवे, जल-तत्वमें उसी क्षण लाभ, बायुतत्वमें थोड़ा लाभ, अग्नितत्वमें हुवाभी लाभ नाश होता है ॥ १९८ ॥

पृथ्व्याःपंचह्यपांवेदागुणास्तेजोद्वि
वायुतः ॥ नभस्येकगुणश्चैवतत्व
ज्ञानमिदंभवेत् ॥ १९९ ॥

अर्थ-पृथ्वीके पांचगुण, जलके चार गुण, तेजके तीन गुण, बायुके दो गुण और आकाश एक गुण वाला ऐसा यह तत्वज्ञान जानना यहां रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, इन पांच गुणोंका वर्णन है॥१९९॥

फूत्कारकृत्प्रस्फुटितविदीर्णापतिता-
धरा ॥ ददातिसर्वकार्येषुअवस्था
सदृशंफलम् ॥ २०० ॥

अर्थ—फूत्कार करनेवाली, फूटी हुई, फटी हुई, गिरी हुई ऐसी पृथ्वी सब कार्योंमें अपनी अवस्थाके प्रमाण फल देती है ॥ २०० ॥

धनिष्ठारोहिणीज्येष्ठानुराधाश्रवणं
तथा ॥ अभिजिदुत्तराषाढापृथ्वी
तत्वमुदाहृतं ॥ २०१ ॥

अर्थ—धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित्, उत्तराषाढ़ा ये नक्षत्र पृथ्वीतत्व जाननें ॥ २०१ ॥

पूर्वाषाढातथाश्लेषामूलमार्द्राचरे-
वती ॥ उत्तराभाद्रपदातोयंतत्वं
शतभिषक्प्रिये ॥ २०२ ॥

अर्थ—हे प्रिये! पूर्वाषाढ़ा, आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपद, शतभिषा ये नक्षत्र जलतत्व जाननें ॥ २०२ ॥

भरणीकृत्तिकापुष्यौमघापूर्वाचफा-
ल्गुनी ॥ पूर्वाभाद्रपदास्वातीतेज-
स्तत्वमितिप्रिये ॥ २०३ ॥

अर्थ—हे प्रिये! भरणी, कृतिका, पुष्य, मघा

पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, स्वाती ये नक्षत्र तेजतत्व जाननें ॥ २०३ ॥

विशाखोत्तरफाल्गुन्यौहस्तांचित्रे
पुनर्वसु ॥ अश्विनीमृगशीर्षेचवा-
युतत्वमुदाहृतम् ॥ २०४ ॥

अर्थ–विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी, मृगशिरा ये नक्षत्र बायुतत्व कहे हैं।२०४।

वहन्नाडीस्थितोदूतोयत्पृच्छतिशुभा-
शुभम् ॥ तत्सर्वसिद्धिमाप्नोतिशू-
न्येशून्यंनसंशयः ॥ २०५ ॥

अर्थ–चलती हुई नाड़ीके तर्फ आके बैठे फिर शुभ अथवा अशुभ फलको पूंछे वह सब सिद्धिको प्राप्त होता है और शून्य नाड़ीमें पूंछनेवालेका कार्य शून्य होता है इसमें संशय नहीं ॥ २०५ ॥

पूर्णोऽपिनिर्गमश्वासेसुतत्वेऽपिन
सिद्धिदः ॥ सूर्यश्चंद्रोतथानृणांसं-
वाहेसर्वसिद्धिदः ॥ २०६ ॥

अर्थ–पूर्णश्वासभी शुभतत्वमेंभी निर्गम होय अर्थात् सूर्य स्वर पूरा चलता होय तवभी जो कोई कुछभी प्रश्न करे तो कार्यकी सिद्धि नहीं होती. और इसी प्रकार चंद्रश्वर चलनेमें मनुष्योंको सर्व सिद्धि होती है ॥ २०६ ॥

तत्वेशमोजयंप्राप्तःसुतत्वेचधनं-
जयः ॥ कौरवानिहताःसर्वेयुद्धे
तत्वविपर्ययात् ॥ २०७ ॥

अर्थ–तत्वबलसे रामचंद्रजीनें विजयको पाया, शुभतत्वमें अर्जुननें विजयको पाया और तत्वोंके विपर्ययसे संपूर्ण कौरव युद्धमें नाश हुये ॥ २०७ ॥

जन्मांतरीयसंस्कारात्प्रसादादथ-
वागुरोः ॥ केषांचिज्जायतेतत्ववा-
सनाविमलात्मनाम् ॥ २०८ ॥

अर्थ–पूर्व जन्मके संस्कारसे अथवा गुरुकी प्रसन्नतासे निर्मल अंतःकरणवाले किसी विरले पुरुषके तत्वज्ञान प्राप्त होता है ॥ २०८ ॥

लंबीजंधरणींध्यायेच्चतुरस्रांसुपी-
तभाम् ॥ सुगंधांस्वर्णवर्णाभांप्रा-
प्नुयाद्देहलाघवम् ॥ २०९ ॥

अर्थ–'लं' ऐसा पृथ्वीतत्वका बीज है यह तत्व स्वरूपसे चतुष्कोण सुगंधयुक्त अथवा सुवर्णकी समान पीतरंग है इस तत्वमें ध्यान करनेवाला शरीरके हलकापनको प्राप्त होता है ॥ २०९ ॥

वंबीजंवारुणंध्यायेत्तत्वमर्धशशि-
प्रभम् ॥ क्षुत्तृष्णादिसहिष्णुत्वंज-
लमध्येचमज्जनम् ॥ २१० ॥

अर्थ-'वं' ऐसा जलतत्वका बीज है तिसका आकार आधे चंद्रमाके समान है. इस तत्वका ध्यान करनेवाला पुरुष क्षुधा, तृषा आदिकोंका सहन करे और जलके बीचमें बुड्डी मारके रहेनेकी सामर्थ्यभी होवे ॥ २१० ॥

रंबीजमग्निजंध्यायेत्त्रिकोणमरुण-
प्रभम् ॥ बव्हन्नपानभोक्तृत्वमात-
पाग्निसहिष्णुता ॥ २११ ॥

अर्थ-'रं' ऐसा अग्नितत्वका बीज है तिसका आकार त्रिकोण, रंग लाल है. इस तत्वका ध्यान करनेवाले पुरुषको बहुत अन्न, जल खानेकी शक्ति होती है और घांम, अग्नि इन्होंको सहनेकीभी सामर्थ्य होती है ॥ २११ ॥

यंबीजंपवनंध्यायेद्वर्तुलंश्यामल-
प्रभम् ॥ आकाशगमनाद्यंचपक्षि
वद्गमनंतथा ॥ २१२ ॥

अर्थ-'यं' यह वायुतत्वका बीज है इसका आकार गोला, श्यामवर्ण ऐसे वायुतत्वके ध्यान करनेवालेको आकाशमें जाना और पक्षियोंकी समान उड़ना ऐसी सामर्थ्य होती ॥ २१२ ॥

हंबीजंगगनंध्यायेन्निराकारंबहुप्र-
भम् ॥ ज्ञानंत्रिकालविषयमैश्वर्य

मणिमादिकम् ॥ २१३ ॥

अर्थ–'हं' यह आकाशतत्वका बीज है यह तत्व निराकार वा अनेक वर्णवाला है. इस्के ध्यान करनेवालेको तीनों कालोंका ज्ञान और अणिमादिक अष्ट सिद्धियांभी प्राप्त होती हैं ॥ २१३ ॥

स्वरज्ञानीनरोयत्रधनंनास्तिततः परम् ॥ गम्यतेस्वरज्ञानेनअनायासंफलंभवेत् ॥ २१४ ॥

अर्थ–जहां स्वरके जाननेवाला मनुष्य होवे तहां उससे परे और कोई धन नहीं है क्योंकि जो कोई स्वरके ज्ञानसे गमन करता है उसको परिश्रमके विना फल प्राप्त होता है ॥ २१४ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ देवदेवमहादेवमहाज्ञानंस्वरोदयम् ॥ त्रिकालविषयंचैवकथंभवतिशंकर ॥ २१५ ॥

अर्थ–देवी (पार्वतीजी) बोली कि हेदेवाधिदेव! हेशंकर! आपनें जो यह स्वरोदय महाज्ञान कहा उस्से भूत, भविष्य, वर्त्तमान इन तीनों कालोंका ज्ञान कैसे होता है सो हमको कहो ॥ २१५ ॥

ईश्वरउवाच ॥ अर्थकालजयप्रश्नशुभाशुभमितित्रिधा ॥ एतत्त्रिकालविज्ञानंनान्यद्भवतिसुंदरि ॥ २१६ ॥

अर्थ–ऐसा पार्वतीजीका बचन सुन, शंकरजी बोले कि हे सुंदरि! भूत, भविष्य, वर्त्तमान इन तीनों कालोंका ज्ञान और प्रयोजनका समय, जय-प्रश्न, शुभाशुभ ऐसा तीन प्रकारका ज्ञान केवल स्वर-ज्ञानसेही होता है अन्य किसीसे नहीं. ॥ २१६ ॥

तत्वेशुभाशुभंकार्येतत्वेजयपराज-यौ ॥ तत्वेसुभिक्षदुर्भिक्षेतत्वंत्रि-पदमुच्यते ॥ २१७ ॥

अर्थ–तत्वमें शुभाशुभ कार्य, तत्वमें जय, पराजय, तत्वमें सुभिक्ष, दुर्भिक्ष ये होते हैं और यह तत्व त्रिपद (कालत्रयाश्रय) कहा है ॥ २१७ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ देवदेवमहादेवसर्वसं-सारसागरे ॥ किन्नराणांपरंमित्रंसर्व कार्यार्थसाधकम् ॥ २१८ ॥

अर्थ–तब देवीजी बोली, कि हे देवाधि देव! इस संपूर्ण संसाररूपी समुद्रमें मनुष्योंका परममित्र और संपूर्ण कार्योंका सिद्ध करनेवाला क्या है? सो हमको कहो ॥ २१८ ॥

ईश्वरउवाच ॥ प्राणएवपरंमित्रंप्राण-एवपरःसखा ॥ प्राणतुल्योपरोबंधु-र्नास्तिनास्तिवरानने ॥ २१९ ॥

अर्थ–तब महादेवजी कहते हैं कि हेवरानने!

प्राणही परममित्र है, प्राणही परम सखा है, प्राणोंकी सदृश अन्य बंधु नहीं है ॥ ५१९ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ कथंप्राणस्थितोवायु देंहःकिंप्राणरूपकः ॥ तत्वेषुसंचरन्प्रा-णोज्ञायतेयोगिभिःकथम् ॥ २२० ॥

अर्थ–ऐसा सुन पार्वतीजी फिर बोली, कि प्रा-णोंमें बायु कैसे रहता है ? देह प्राणरूप कैसा है? और तत्वोंमें विचरनेवाले प्राणवायुको योगी लोग कैसे जानते हैं? सो कहो ॥ २२० ॥

श्रीशिवउवाच ॥ कायानगरमध्यस्थो मारुतोरक्षपालकः ॥ वेशेदशांगुलः प्रोक्तोनिर्गमेद्वादशांगुलः ॥ २२१ ॥

अर्थ–शंकरजी कहते हैं कि शरीररूपी नगरमें स्थित वायु, प्राणोंका रक्षा (पालन) करनेवाला है सो वह अंदर प्रवेशके समय १० अंगुल और बाहर निकलनेके समय बारह अंगुल कहा है ॥ २२१ ॥

गमनेतुचतुर्विंशन्नेत्रवेदास्तुधा-वने ॥ मैथुनेपंचषष्ठिश्चशयनेच शतांगुलम् ॥ २२२ ॥

अर्थ–गमन कालमें २४ अंगुल, दौड़नेके समय४२ अंगुल, मैथुन कालमें ६५ अंगुल, निद्राके समय १००अंगुल ऐसी प्राणवायुकी गतियां होती हैं॥ २२२ ॥

प्राणस्यतुगतिर्देविस्वभावाद्वाद-
शांगुलम् ॥ भोजनेवचनेचैवग-
तिरष्टादशांगुलम् ॥ २२३ ॥

अर्थ–हे देवि! प्राणकी स्वाभाविक गति बारह १२ अंगुल है परंतु भोजनके समय वा बोलनेमें १८ अंगुलकी गति होती है ॥ २२३ ॥

एकांगुलेकृतेन्यूनेप्राणेनिष्कामतामता ॥ आनंदस्तुद्वितीयेस्यात्कविशक्तिस्तृतीयके ॥ २२४ ॥ वाचासिद्धिश्चतुर्थेचदूरदृष्टिस्तुपंचमे ॥ षष्ठेत्वाकाशगमनंचंडवेगश्चसप्तमे ॥ २२५ ॥

अर्थ–प्राणकी गति बारह अंगुल है तिसमें जो एक १ अंगुल गति योगीजन योगाभ्यासमें कम करैं तो निष्कामता प्राप्त होती है. दो २ अंगुल कम करनेपर आनंद प्राप्त होता है. तीन ३ अंगुल कम करनेपर काव्य बनानेकी शक्ति होती है ॥ २२४ ॥ चार ४ अंगुल कमती करनेसे वाचासिद्धि और पांच ५ अंगुल कम करनेसे दूरतक नेत्रोंकी दृष्टि पहुंचने लगै. छह ६ अंगुल कम करनेसे आकाशका गमन और सात ७ अंगुल कम करनेसे प्रचंड वेग प्राप्त होता है ॥ २२५ ॥

अष्टमेसिद्धयश्चैवनवमेनिधयोनव ॥

दशमेदशमूर्तिश्चछायाचैकादशेभवे-
त् ॥ २२६ ॥ द्वादशेहंसचारश्चगंगा-
मृतरसंपिबेत् ॥ आनखाग्रंप्राणपूर्णे
कस्यभक्ष्यंचभोजनम् ॥ २२७ ॥

अर्थ—आठ ८ अंगुल कम करनेसे अष्टसिद्धियां, नव ९ अंगुल करनेसे नवनिधियां प्राप्त होती हैं. दश १० अंगुल कम करनेसे दश १० प्रकारके स्वरूप और ग्यारह ११ अंगुल कम करनेसे छायाकी नाहीं होता है ॥ २२६ ॥ बारह अंगुल श्वास-कम करनेसे हंसगति वा गंगामृतरसको पान करता है. ऐसे शिरसे ले नखोंतक जो योगी प्राणोंको पूर्ण करता है अर्थात् प्राणनिरोध करता है उसको फिर खाने पीनेकी जरूरत नहीं रहती ॥ २२७ ॥

एवंप्राणविधिःप्रोक्तासर्वकार्यफल-
प्रदा ॥ ज्ञायतेगुरुवाक्येननविद्या-
शास्त्रकोटिभिः ॥ २२८ ॥

अर्थ—ऐसे संपूर्ण कार्योंके फलको देनेवाली प्राण-विधि कही है; इस विधिको ज्ञान गुरुवचनसे जानै गुरु शिवाय विद्या वा कोट्यावधि शास्त्रोंसे नहीं होता ॥ २२८ ॥

प्रातश्चंद्रोरविःसायंयदिदैवान्नलभ्य-
ते ॥ मध्याह्नान्मध्यरात्राच्चपरतस्तु

प्रवर्त्तते ॥ २२९ ॥

अर्थ—प्रातःकाल चंद्रमा और सायंकाल सूर्य जो प्रारब्ध योगसे न मिलैं तो मध्यान्ह अथवा अर्द्ध-रात्रसे पीछे प्रवर्त्त होते हैं ॥ २२९ ॥

दूरयुद्धेजयीचंद्रःसमासन्नेदिवाकरः ॥ वहन्नाड्यागतःपादःसर्वसिद्धिप्रदा-यकः ॥ २३० ॥

अर्थ—दूर युद्ध करनेमें चंद्रमा विजय करने-वाला है. निकट युद्धमें सूर्य विजय करनेवाला है. जिस तर्फका श्वास चलता हो उसी तर्फका पैर आगे करके यात्रा करै तो वह यात्रा संपूर्ण सिद्धियोंको देती है ॥ २३० ॥

यात्रारंभेविवाहेचप्रवेशेनगरा-दिके ॥ शुभकार्याणिसिध्यंतिचंद्र-चारेषुसर्वदा ॥ २३१ ॥

अर्थ—यात्रारंभ, विवाह नगर आदिकोंका प्रवेश इत्यादि शुभ कार्य चंद्रस्वर चलनेपर हमेशैं सिद्ध होते हैं ॥ २३१ ॥

अयनतिथिदिनेशैःस्वीयतत्वेचयुक्तेवह-तियदिकदाचिद्दैवयोगेनपुंसाम् ॥ सजय-तिरिपुसैन्यंस्तंभमात्रस्वरेणप्रभवतिनच विघ्नंकेशवस्यापिलोके ॥ २३२ ॥

अर्थ-अयन, तिथि, वार इन्होंके स्वामियोंसे युक्त और अपने स्वरका तत्व जो दैवयोगसे पुरुषोंक चलता हो तो वह पुरुष स्वरके रोकने मात्रसेही शत्रुकी सेनाको जीतता है उसको वैकुंठ लोकमेंभी विघ्न नहीं होता है ॥ २३२ ॥

जीवंरक्षजीवंरक्षजीवांगेपरिधायच ॥
जीवोजपतियोयुद्धेजीवन्जयतिमेदिनीम् ॥ २३३ ॥

अर्थ-जीवांगमें वस्त्र पहरके "जीवं रक्ष जीवं रक्ष" ऐसा जो जप करता है वह पुरुष युद्धमें जीता हुवा पृथ्वीको जीतता है ॥ २३३ ॥

भूमौजलेचकर्त्तव्यंगमनंशांतकर्मसु ॥ वन्हौवायौप्रदीप्तेषुखेपुनर्नोभयेष्वपि ॥ २३४ ॥

अर्थ-शांतकर्मोंमें पृथ्वी और जलतत्वमें गमन करै. अग्नि वा वायुतत्वमें युद्धादि उग्र कर्मोंमें गमन करै. और आकाशतत्वमें दोनों कामोंमें गमन न करै ॥ २३४ ॥

जीवेनशस्त्रंबध्नीयाज्जीवेनैवविकाशयेत् ॥ जीवेनप्रक्षिपेच्छस्त्रंयुद्धे जयतिसर्वदा ॥ २३५ ॥

अर्थ-जीव (जिस तर्फका स्वर चलता हो

उसही हाथ) करके शस्त्रको बांधे. और जीवसेही शस्त्रको संवारे और जीव करके हाथसे शस्त्रको फेंकै वह मनुष्य युद्धमें हमेशैं जीतता है ॥ २३५ ॥

आकृष्यप्राणपवनंसमारोहेतवा-
हनम् ॥ समुत्तरेपदंदद्यात्सर्वकार्या-
णिसाधयेत् ॥ २३६ ॥

अर्थ–जो पुरुष प्राणवायुको आकर्षण करके सवारी पर चढ़ै और अश्वके दहिनी तर्फ पैरको लगाके चढ़ै तो सब कार्योंकी सिद्धि होती है ॥ २३६ ॥

अपूर्णेशत्रुसामग्रीपूर्णेवास्वबलं
तथा ॥ कुरुतेपूर्णतत्वस्थोजय-
त्येकोवसुंधराम् ॥ २३७ ॥

अर्थ–जिस तर्फका स्वर न चलता हो उस तर्फ शत्रुसेनाकी सामग्री और पूर्ण स्वरमें अपनी सेनाको करके पूर्ण तत्वमें स्थित हुवा जो युद्ध करता है वह अकेलाही पृथ्वी को जीतता है ॥ २३७॥

यानाडीवहतेचांगेतस्यामेवाधि
देवता ॥ सम्मुखेऽपिदिशातेषांस-
र्वकार्यफलप्रदा ॥ २३८ ॥

अर्थ–शरीरमें जो नाडी चलती हो तो उसही

नाड़ीका अधिपति देवता हो तो उसी अंगको सन्मुख दिशामें करै तो संपूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है ॥ २३८ ॥

आदौतुक्रियतेमुद्रापश्चाद्युद्धंसमाचरेत् ॥ सर्पमुद्राकृतायेनतस्यसिद्धिर्नसंशयः ॥ २३९ ॥

अर्थ–पहले मुद्राको करके, उसके उपरांत युद्धको करै जिसने सर्पमुद्राको किया उस्की संदेहरहित सिद्धि होती है ॥ २३९ ॥

चंद्रप्रवाहेप्यथसूर्यवाहेभटाःसमायांतिचयोद्धुकामाः ॥ समीरणस्तत्वविदांप्रतीतोयाशून्यतासाप्रतिकार्यनाशम् ॥ २४० ॥

अर्थ–चंद्र वा सूर्य कोई स्वर चलता हो और युद्ध करनेकी इच्छावाले बीर जे आते हैं तहां वायुतत्व वा पूर्ण स्वर चलता हो तो विजय पावते हैं और शून्यस्वरमें कार्य नाश (पराजय) पावते हैं ऐसा तत्वके जाननेवालोंका निश्चय है ॥ २४० ॥

यांदिशंवहतेवायुर्युद्धंतद्दिशिदापयेत् ॥ जयत्येवनसंदेहःशक्रोपि यदिचाग्रतः ॥ २४१ ॥

अर्थ–जिस दिशाको वायु चलता हो उसी दिशामें खड़े होके, युद्ध करै तो जो युद्ध करनेको

अगाड़ी इंद्रभी आया हो तो उस्कोभी जीतता है इसमें संदेह नहीं ॥ २४१ ॥

यत्रनाड्यांवहेद्वायुस्तदंगेप्राणमेवच ॥ आकृष्यगच्छेत्कर्णांतंजयत्येवपुरंदरम् ॥ २४२ ॥

अर्थ—जिस नाड़ीमे वायु चलता हो उसी अंगकी तर्फ प्राणको कर्ण पर्यंत खींचके गमन करै तो इंद्रकोभी जीतता है ॥ २४२ ॥

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यःपूर्णांगंयोऽभिरक्षति ॥ नतस्यरिपुभिःशक्तिर्बलिष्ठैरपिहन्यते ॥ २४३ ॥

अर्थ—जो पुरुष युद्धके समय शत्रुवोंके प्रहारोंसे अपने पूर्णांगकी रक्षा करता है उसकी शक्ति बलवान्भी शत्रुवोंसे नाश नहीं होती है ॥ २४३ ॥

अंगुष्ठतर्जनीवंशेपादांगुष्ठेतथाध्वनिः ॥ युद्धकालेचकर्त्तव्यो लक्षयोद्धाजयीभवेत् ॥ २४४ ॥

अर्थ—युद्धके बखत अँगूठा और तर्जनी अंगुलीके पोरोंमें शब्द होवे वा पैरोंके अंगूठेमें शब्द करै वह पुरुष लक्षावधि योद्धाओंसेभी युद्ध करके जीतता है ॥ २४४ ॥

निशाकरेरवौचारेमध्येयस्यसमी-

रणः ॥ स्थितोरक्षेद्दिगंतानिजय-
कांक्षीगतःसदा ॥ २४५ ॥

अर्थ–चंद्रस्वरमें अथवा सूर्यस्वरमें जो वायुका स्वर चलता हो उस समय हमेशैं जयकी इच्छावाला पुरुष गमन करै तो दिशांओंकी रक्षा करता है ॥ २४५ ॥

श्वासप्रवेशकालेतुदूतोजल्पतिवां-
छितम् ॥ तस्यार्थःसिद्धिमायाति
निर्गमेनैवसुंदरि ॥ २४६ ॥

अर्थ–हे सुंदरि ! जिस मनुष्यके श्वास अंदर जानेके समय जो दूत बांछित वार्ताको कहै तो उसका कार्य सिद्धिको प्राप्त होता है श्वास बाहर निकलनेके समय जो कहै तो कार्यसिद्धि नहीं होती ॥ २४६ ॥

लाभादीन्यपिकार्याणिपृष्टानिकी-
र्तितानिच ॥ जीवेविशतिसिध्यंति
हानिर्निःसरणेभवेत् ॥ २४७ ॥

अर्थ–लाभादिक कोई शुभ कार्य कहेगये अथवा पूछेगये वे श्वासके अंदर प्रवेश होते समय सिद्ध होते हैं और श्वासके बाहर निकलनेके समय हानि होती है ॥ २४७ ॥

नरेदक्षास्वकीयाचस्त्रियांवामाप्रश-

स्यते ॥ कुंभकोयुद्धकालेचतिस्रो
नाड्यास्त्रयीगतिः ॥ २४८ ॥

अर्थ–पुरुषकी अपनी दक्षिण नाड़ी शुभ है और स्त्रीकी वाम नाड़ी शुभ है युद्धके समय कुंभक प्रशस्त है ऐसे तीनों नाड़ियोंकी तीन गतियां जाननी॥२४८॥

हकारस्यसकारस्यविनाभेदंस्वरः
कथम् ॥ सोऽहंहंसपदेनैवजीवो
जयतिसर्वदा ॥ २४९ ॥

अर्थ–हकार और सकार इन्होंके भेद बिना स्वरज्ञान कैसे होवे इस्से सोहं, हंस, इन पदोंसेही जीव हमेशै सर्वोत्कर्ष पावता है ॥ २४९ ॥

शून्यांगंपूरितंकृत्वाजीवांगेगोपयेज्ज-
यम् ॥ जीवांगेघातमाप्नोतिशून्यां-
गंरक्षतेसदा ॥ २५० ॥

अर्थ–शून्य अंगको परिपूर्ण करके जीवांगकी रक्षा करै तो जय प्राप्त होता है जीवांगमें रक्षा न करै और शून्यांगकी रक्षा करे तो जीवांगमें घात होता है ॥ २५० ॥

वामेवायदिवादक्षेयदिपृच्छतिपृ-
च्छकः ॥ पूर्णघातोनजायेतशून्ये
घातंविनिर्दिशेत् ॥ २५१ ॥

अर्थ–बायें अथवा दहिने अंगकी तर्फ जो पृच्छक

युद्धगमनविषयक प्रश्न करै तहां जो पूर्णस्वर चलता हो तो घात नहीं होता और शून्यस्वर होवे तो घात कहना चाहिये ॥ २५१ ॥

भूतत्वेनोदरेघातःपदस्थानेंऽबुना
भवेत् ॥ ऊरुस्थानेऽग्नितत्वेनक-
रस्थानेचवायुना ॥ २५२ ॥

अर्थ–प्रश्नके समय जो पृथ्वीतत्व चालता हो तो पेटमें घात, उदकतत्व होवे तो पैरोंमें घात, अग्नितत्व हो तो जंघोंमें घात और वायुतत्व चलता हो तो हाथ-में घात ॥ २५२ ॥

शिरसिव्योमतत्वेचज्ञातव्योघात-
निर्णयः ॥ एवंपंचविधोघातःस्वर-
शास्त्रेप्रकाशितः ॥ २५३ ॥

अर्थ–आकाशतत्व चलता हो तो शिरमें घात होवै ऐसे पांच प्रकारका घात स्वरशास्त्रमें कहा है तिस्से घातका निर्णय जानना ॥ २५३ ॥

युद्धकालेयदाचंद्रःस्थायीजयति
निश्चितम् ॥ यदासूर्यप्रवाहस्तुया-
यीविजयतेतदा ॥ २५४ ॥

अर्थ–युद्धके समय जो चंद्रस्वर चलता हो तो निश्चय स्थानी अर्थात् स्वदेशमें स्थित हुवाही जयको प्राप्त होता है और जो सूर्यस्वर चलता हो तो

यायी अपने देशसे दूसरेके देशमें जावे वह जयको प्राप्त होता है ॥ २५४ ॥

**जयमध्येतुसंदेहेनाडीमध्यंतुलक्ष-
येत् ॥ सुषुम्नायांगतेप्राणेसमरे
शत्रुसंकटम् ॥ २५५ ॥**

अर्थ—जयके विषयमें जो संदेह होवे तो नाड़ीको मध्य अवलोकन करै जो सुषुम्ना नाड़ीमें प्राणवायु चलता हो तो संग्राममें शत्रुसे संकट प्राप्त होता हैं ॥ २५५ ॥

**यस्यानाड्याभवेच्चारस्तांदिशंयुधिसं-
श्रयेत् ॥ तदाऽसौजयमाप्नोतिनात्र
कार्याविचारणा ॥ २५६ ॥**

अर्थ—जो नाड़ी चलती हो उसी दिशामें युद्धके बखत खड़ा होना कि जैसे चंद्रनाड़ी चलती हो तो पूर्व अथवा उत्तर और सूर्यकी नाड़ीमें दक्षिण वा पश्चिम इन दिशाओंमे खड़े होके, युद्ध करनेवाला जयको प्राप्त होता है इसमें कुछ विचार नहीं हैं॥२५६॥

**यदिसंग्रामकालेतुवामनाडीयदावहे
त् ॥ स्थायिनोविजयंविद्याद्रिपुव-
श्योदयोऽपिच ॥ २५७ ॥**

अर्थ—संग्रामके समय जो वाम नाड़ी चलती हो

तो स्वदेशमें स्थित हुये बीरको जय प्राप्त होता है और शत्रुभी वश होता है ॥ २५७ ॥

यदिसंग्रामकालेतुसूर्यस्तुव्यावृतो वहेत् ॥ तदायायिजयंविद्यात्स-देवासुरमानवे ॥ २५८ ॥

अर्थ–जो युद्ध के समय सूर्यका स्वर चलने लगे तो गमन करनेवालेको देवता, दैत्य वा मनुष्य इन्होंके युद्धमें जय प्राप्त होता है ॥ २५८ ॥

रणेहरतिशत्रुस्तंवामायांप्रविशे-न्नरः ॥ स्थानंविषुवचारेणजयः सूर्येणधावता ॥ २५९ ॥

अर्थ–जो पुरुष बायां स्वर चलते बखत संग्राममें प्रवेश करता है; उसको शत्रु जीतता है. विषुव (सुषुम्ना) नाड़ीके चलते बखत चलनेवालेको स्थान प्राप्त होताहै. और सूर्यस्वरके चलने बखत दौड़नेवालेको विजय प्राप्त होता है ॥ २५९ ॥

युद्धद्वयेकृतेप्रश्नेपूर्णस्यप्रथमेज-यः ॥ रिक्तेचैवद्वितीयस्तुजयीभ-वतिनान्यथा ॥ २६० ॥

अर्थ–दो मनुष्योंने युद्धविजयविषयी प्रश्न जो एकही बखत किया तो प्रथम प्रश्न करनेवाला पूर्णस्वर चलता हो तो जय पाता है और खाली स्वर

चलता हो तो दूसरेको जय प्राप्त होती है अन्यथा नहीं ॥ २६० ॥

**पूर्णनाडीगतःपृष्ठेशून्यांगंचतदा-
ग्रतः ॥ शून्यास्थानेकृतःशत्रुर्म्रि-
यतेनात्रसंशयः ॥ २६१ ॥**

अर्थ—पूर्ण नाड़ी चलते समय जो संग्राममें गमन करै तो शत्रु पिछौंड़ा होके चला जावे और शून्य नाड़ीमें गमन करै तो शत्रु अगाड़ी आके प्राप्त होवे और शून्य स्थान अर्थात् जो स्वर न चलता हो उसकी तर्फ शत्रुको करै तो शत्रु निःसंशय मरण पावता है ॥ २६१ ॥

**वामचारेसमंनामयस्यतस्यजयो-
भवेत् ॥ पृच्छकोदक्षिणेभागेवि-
जयीविषमाक्षरः ॥ २६२ ॥**

अर्थ—कोई पृच्छक बायीं तर्फ जयविषयी प्रश्न करै तो उसके मुखसे निकले हुये प्रश्नके अक्षर अथवा जिस कार्यको पूंछता है उसके नामाक्षर विषम (१, ३, ५,) वा सम (२, ४, ६,) यह देखै सम हों तो जय विषम हों तो पराजय होता है. दहिनी तर्फ प्रश्न करनेवालेके प्रश्नाक्षर विषम हों तो जय सम हों तो पराजय होता है ॥ २६२ ॥

यदापृच्छतिचंद्रस्यतदासंधानमा-

दिशेत् ॥ पृच्छेद्यदातुसूर्यस्यत-
दाजानीहिविग्रहम् ॥ २६३ ॥

अर्थ--प्रच्छक जो चंद्रस्वर चलता हो उसी समय युद्धविषयका प्रश्न करै तो संधि (मेल) होगा और सूर्यस्वर चलनेमें प्रश्न करै तो युद्ध होगा ऐसा जानना ॥ २६३ ॥

पार्थिवेचसमंयुद्धंसिद्धिभवतिवा-
रुणे ॥ युद्धेहितैजसेभंगोमृत्युर्वा-
योनभस्यपि ॥ २६४ ॥

अर्थ--पृथ्वीतत्वमें जो युद्धका प्रारंभ हुआ हो तो वरोबर होता है जलतत्वमें जयप्राप्ति होती है अग्नितत्वमें अंग भंग इत्यादिक होवें बायुतत्व, आकाशतत्वमें मृत्यु होती है ऐसा जानना ॥ २६४ ॥

निमित्ततःप्रमादाद्वायदानज्ञायते-
ऽनिलः ॥ प्रश्नाकालेतदाकुर्यादि-
दंयत्नेनबुद्धिमान् ॥ २६५ ॥

अर्थ--कोई निमित्तसे अथवा गफलतसे दहिना अथवा बायां जो स्वरका ज्ञान यथार्थ न जानै तो प्रश्नके समय ज्ञानवान् पुरुष आगे कहा हुवा यह यत्न करै ॥ २६५ ॥

निश्चलांधारणांकृत्वापुष्पंहस्ता-
न्निपातयेत् ॥ पूर्णांगेपुष्पपतनं-

शून्यंवातत्परंभवेत् ॥ २६६ ॥

अर्थ--निश्चल मनको शरीरसमान करके, अपने हाथसे पुष्पको जमीनमें गिरावै वह पुष्प जिस अंगमे पड़े वह पूर्ण अंग और दूसरा शून्य अंग जानना ॥ २६६ ॥

तिष्ठन्नुपविशन्नापिप्राणमाकर्षय-
न्निजम् ॥ मनोभंगमकुर्वाणःसर्व-
कार्येषुजीवति ॥ २६७ ॥

अर्थ–कोई कार्य करनेमें खड़ा रहता वा बैठता हुवा, मनोत्साहको भंग न होने देता जो मनुष्य अपने प्राणवायुको अंदर खींचता है वह सब कार्यों-में जीवता है ॥ २६७ ॥

नकालोविविधंघोरंनशस्त्रंनचपन्न-
गाः ॥ नशत्रुव्याधिचोराद्याःशू-
न्यस्थानाशितुंक्षमाः ॥ २६८ ॥

अर्थ–काल, अनेकों प्रकारके भयानक शस्त्र, सर्प, शत्रु, व्याधि, चोर वगैरह ये संपूर्ण शून्यअंगमें स्थित होवें तो तिस मनुष्यको मारनेको समर्थ नहीं है २६८

जीवेनस्थापयेद्वायुंजीवेनारंभये-
त्पुनः ॥ जीवेनक्रीडतेनित्यंद्यूते-
जयतिसर्वथा ॥ २६९ ॥

अर्थ–जीवस्वरसे वायुको स्थित करै फिर जीव-

स्वरसेही प्रारंभ करै और जीवस्वरसेही जुवां आदि-खेलनेका आरंभ करै तो वह मनुष्य जुवांमे हमेशैं जीतता है ॥ २६९ ॥

स्वरज्ञानिबलादग्रेनिष्फलंकोटि-धाभवेत् ॥ इहलोकेपरत्रापिस्व-रज्ञानीबलीसदा ॥ २७० ॥

अर्थ--स्वरतत्वका ज्ञान जिसको है उसके अगाड़ी किसीका बल चलता नहीं हैं जो कोई उससे विरुद्ध करोड़ो प्रकारके उपाय करै तो वे निष्फल होते हैं स्वरज्ञानी इस लोकमें वा पर लोकमें सर्वकाल बली होता है ॥ २७० ॥

दशशतायुतंलक्षंदेशाधिपबलंक-चित् ॥ शतक्रतुसुरेंद्राणांबलंको-टिगुणंभवेत् ॥ २७१ ॥

अर्थ--कहीं राजाको दससौ १००, दस हजार १०००० अथवा लक्ष वीरोंका बल हो तो स्वर बलसे होता है इंद्र वा ब्रह्मादिक देवतावोंके कोट्यावधि बीरोंका बल है वह भी स्वरबलसेही जानना ॥ २७१ ॥

देव्युवाच ॥ परस्परंमनुष्याणांयुद्धे प्रोक्तोजयस्त्वया ॥ यमयुद्धेसमुत्पन्ने मनुष्याणांकथंजयः ॥ २७२ ॥

अर्थ--पार्वतीजी कहती हैं कि हेशंकरजी !

मनुष्योंके परस्पर युद्धमें जय आपनें कहा परंतु यमराजके संग युद्ध प्राप्त भयेपर मनुष्योंको जय कैसे प्राप्त होगा ? ॥ २७२ ॥

ईश्वरउवाच॥ध्यायेद्देवंस्थिरोजीवंजुहुयाज्जीवसंगमे ॥ इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्य महालाभोजयस्तथा ॥ २७३ ॥

अर्थ—तब शंकरजी कहते हैं कि स्वस्थ होके देवका ध्यान करै उसके पश्चात् जीवको जीवसंगम अर्थात् कुंभक नाडीमें जीवस्वरका होम करे उस पुरुषको इष्टसिद्धि, महालाभ वा जय ये प्राप्त होते हैं ॥ २७३ ॥

निराकारात्समुत्पन्नंसाकारंसकलंजगत् ॥ तत्साकारंनिराकारंज्ञानेभवतितत्क्षणात् ॥ २७४ ॥

अर्थ—निराकर परमात्मासे संपूर्ण साकार जगत् उत्पन्न हुवा सो वह साकार जगत् ईश्वरके ज्ञान भये पर उसी क्षण निराकार होता है ॥ २७४ ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ नरयुद्धंयमयुद्धंत्वयाप्रोक्तंमहेश्वर ॥ इदानींदेवदेवानांवशीकरणकंवद ॥ २७५ ॥

अर्थ--पार्वतीजी कहती हैं कि हे महेश्वर ! आपनें मनुष्योंका युद्ध, व धर्मराजका युद्ध कहा अब देवता-

वोंके देवोंके वशीकरणका प्रकार आप कहो ?॥२७५॥

ईश्वरउवाच ॥ चंद्रंसूर्येणचाकृष्य-स्थापयेज्जीवमंडले ॥ आजन्मवशगा-रामाकथितेयंतपोधनैः ॥ २७६ ॥

अर्थ--महादेवजी बोलेके स्वस्त्रीका चंद्रस्वर चलता हो तो अपने सूर्यस्वरसे तिसका चंद्रस्वर आकर्षण कर, अपने जीवस्वरमें मिलावै तो वह स्त्री जन्मभर अपने वशमें रहती है ऐसा तपोधन मुनियोंने कहा है परंतु परस्त्रीविषयमें नहीं ॥ २७६ ॥

जीवेनगृह्यतेजीवोजीवोजीवस्य-दीयते ॥ जीवस्थानेगतोजीवो बालाजीवांतकारकः ॥ २७७ ॥

अर्थ--जो पुरुष अपने जीवस्वरसे स्त्रीका जीवस्वर ग्रहण करै और स्त्रीके जीवस्वरको अपना जीवस्वर देवै इस प्रकार जीवस्थानमें टिका हुवा जीवस्वर स्त्रीके जीवको अपने आधीन करता है ॥ २७७ ॥

रात्र्यंतयामवेलायांप्रसुप्तेकामिनी-जने ॥ ब्रह्माजीवंपिबेद्यस्तुबाला-प्राणहरोनरः ॥ २७८ ॥

अर्थ--रात्रिके पिछले प्रहर जब स्त्री सोती होवे तब जो पुरुष ब्रह्मजीव (सुषुम्नास्वर) को अपने स्वरसे पान करता है वह पुरुष उस स्त्रीके प्राणको

वशमें करता है ॥ २७८ ॥

अष्टाक्षरंजपित्वातुतस्मिन्कालेगते सति ॥ तत्क्षणंदीयतेचंद्रोमोहमायातिकामिनी ॥ २७९ ॥

अर्थ–सुषुम्ना स्वरका समय व्यतीतभये पर अष्टाक्षर मंत्रको जप करके, फिर अपना चंद्रस्वर जो स्त्रीको देता है तो वह स्त्री मोहित होके, तत्काल बशमें हो जाती है ॥ २७९ ॥

शयनेवाप्रसंगेवायुवत्यालिंगनेऽपिवा ॥ यःसूर्येणपिवेच्चंद्रंसभवेन्मकरध्वजः ॥ ॥ २८० ॥ शिवआलिंग्यतेशक्त्याप्रसंगेदक्षिणेऽपिवा ॥ तत्क्षणाद्दापयेद्यस्तुमोहयेत्कामिनीशतम् ॥ २८१ ॥

अर्थ--शयनकालमें, रतिके समय अथवा स्त्रीके आलिंगन समय जो मनुष्य अपने सूर्यस्वरसे स्त्रीका चंद्रस्वर पान करता है वह मनुष्य कामदेवके सदृश स्त्रियोंको मोहकारक होता है ॥ २८० ॥ जो रति समय शिव (सूर्यस्वर) पुरुषका होवे और स्त्रीका शक्ति (चंद्रस्वर) होवे यदि ये दोनों स्वर एकमें मिलजांय वा स्त्रीके दहिने स्वरमें अपने चंद्रस्वरको प्रवेश कर ऐसा करने पर पुरुष तत्क्षण सौ १०० स्त्रियोंको मोहित करता है ॥ २८१ ॥

सप्तनवत्रयःपंचवारान्संगस्तुसूर्य-
भे ॥ चंद्रेद्विचतुःषट्कृत्वोवश्याभ-
वतिकामिनी ॥ २८२ ॥

अर्थ–स्त्रीके सूर्यस्वरसे अपना चंद्रस्वर दिये पश्चात् सात ७, नव ९, तीन ३, पांच ५ इतने वार संग करै और तिस स्त्रीके चंद्रस्वरमें आपना सूर्यस्वर देवे तो २, ४, ६ वार संग करै तो स्त्री वशमें होती है ॥ २८२ ॥

सूर्यचंद्रौसमाकृष्यसर्पाक्रांत्याधरो-
ष्ठयोः ॥ महापद्मेमुखंस्पृष्ट्वावारंवा-
रमिदंचरेत् ॥ २८३ ॥

अर्थ–सूर्य वा चंद्रस्वको सर्पकी चाल करके खींचके, अपने मुखसे स्त्रीके अधरोष्ठ स्पर्स कर फिर बारंबार इस आचरणको करै अर्थात् प्रथम कथनपूर्वक चंद्र वा सूर्यस्वरको मिलान करै ॥ २८३ ॥

आप्राणमितिपद्मस्ययावन्निद्राव-
शंगता ॥ पश्चाज्जागृतिवेलायांचो-
ष्येतेगलचक्षुषी ॥ २८४ ॥

अर्थ–जबतक स्त्री निद्राके वशमें रहै तबतक उस स्त्रीके मुखकमलका चुंबन करता रहै शयनके पीछे अर्थात् जागै उस समय नेत्र अथवा गलाको चुंबन करै ॥ २८४ ॥

अनेनविधिनाकामीवशयेत्सर्वकामिनीः ॥ इदंनवाच्यमन्यास्मिन्नित्याज्ञापरमेश्वरि ॥ २८५ ॥

अर्थ–हे महेश्वरि ! इस विधिसे कामीपुरुष सर्व स्त्रियोंको बशमें करता है परंतु यह वशीकरण और किसीके सामने न कहना यह मेरी हमेशैं आज्ञा है ॥ २८५ ॥ इति वशीकरणम् ॥

॥ अथ गर्भप्रकणम् ॥

ऋतुस्नातारतानारीपंचमेऽन्हियदाभवेत् ॥ सूर्याचंद्रमसोर्योगेसेवनात्पुत्रसंभवः ॥ २८६ ॥

अर्थ–ऋतुकाल (रजस्वलाधर्म) को प्राप्त हुई स्त्री पांचवें दिन जो पतिके साथ रमण करती है तो उसका चंद्रस्वर और पतिका सूर्यस्वर इन दोनोंके संयोगमें संभोगकरनेसे पुत्र उत्पन्न होता है ॥३८६॥

शंखवल्लीगवांदुग्धेपृथ्व्यापोवहते यदा ॥ भर्तुरेववदेद्वाक्यंदर्पदेहि त्रिभिर्वचः ॥ २८७ ॥

अर्थ–जब पृथ्वी वा जलतत्व चलता हो तब स्त्री ऋतुस्नान करके, गौके दूधमें शंखवल्लीको पीवे पिये पीछे संभोगकर ऐसा पतिसे तीनबार बचनको बोले ॥ २८७ ॥

ऋतुस्नातापिबेन्नारीऋतुदानंतु
योजयेत् ॥ रूपलावण्यसंपन्नो
नरसिंहःप्रसूयते ॥ २८८ ॥

अर्थ–ऋतुस्नाता शंखवल्लीको पीके फिर पुरुषसे संभोग करै तो रूपवान् वा मनुष्योंमें सिंहसमान, पराक्रमी ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है ॥ २८८ ॥

सुषुम्नासूर्यवाहेनऋतुदानंतुयो-
जयेत् ॥ अंगहीनःपुमान्यस्तुजा-
यतेत्रासविग्रहः ॥ २८९ ॥

अर्थ–सूर्यस्वरके चलनेमें जो सुषुम्नास्वर चलता हो उस समय जो पुरुष ऋतुकालमें रतिदान करता है उसके अंगहीन वा कुरूपी पुत्र उत्पन्न होता है ॥ २८९ ॥

विषमांकेदिवारात्रौविषमांकेदिना-
धिपः ॥ चंद्रतोयाग्नितत्वेषुवंध्या
पुत्रमवाप्नुयात् ॥ २९० ॥

अर्थ–ऋतुधर्म हुयेके चार दिन उपरांत विषम दिनोंमें दिवसमें वा रात्रिमें पुरुषका सूर्यस्वर चलै और स्त्रीके चंद्रस्वरमें उदक वा अग्नितत्व चलता हो तब स्त्रीके संभोग करनेसे वंध्याभी पुत्रको प्राप्त होती है ॥ २९० ॥

ऋत्वारंभेरविःपुंसांस्त्रीणांचैवसुधा-

करः ॥ उभयोःसंगमेप्राप्तेवंध्यापु-
त्रमवाप्नुयात् ॥ २९१ ॥

अर्थ—ऋतुकालके आरंभमें पुरुषोंका सूर्यस्वर और स्त्रियोंका चंद्रस्वर चलता होवे तब दोनोंके संगम प्राप्त भये पर वंध्याभी पुत्रको प्राप्त होती है ॥ २९१ ॥

ऋत्वारंभेरविःपुंसांशुक्रांतेचसुधा-
करः ॥ अनेनक्रमयोगेनानादत्तेदै-
वदारुकः ॥ २९२ ॥

अर्थ—ऋतुके आरंभमें पुरुषोंका सूर्यस्वर चलता हो और बीर्यपतनके उपरांत चंद्रस्वर चलने लगै तब यह महायोग भाग्यहीनको गर्भ ग्रहण नहीं करने देता है ॥ २९२ ॥

चंद्रनाडीयदाप्रश्नेगर्भेकन्यातदा
भवेत् ॥ सूर्योभवेत्तदापुत्रोद्वयोर्ग-
र्भोविहन्यते ॥ २९३ ॥

अर्थ—प्रश्नकालमें जो चंद्रस्वर चलता हो तब कन्या गर्भमें है एसा कहै. और सूर्यस्वर चलता हो तब पुत्रका गर्भ कहै जब दोनों स्वर (सुषुम्ना) नाड़ी चलती होवे तो गर्भका नाश होगा ऐसा जानना ॥ २९३ ॥

पृथ्वीपुत्रीजलेपुत्रःकन्यकातुप्रभं-

जने ॥ तेजसिगर्भपातःस्यान्न-
भस्यपिनपुंसकः ॥ २९४ ॥

अर्थ-प्रश्नकालमें जो पृथ्वीतत्व चलता हो तो कन्या, जलतत्व हो तो पुत्र, वायुतत्व हो तो कन्या, तेजतत्वमें गर्भ पात होता है और आकाशतत्वमें नपुंसक होता है ॥ २९४ ॥

चंद्रेस्त्रीपुरुषःसूर्येमध्यमार्गेनपुं-
सकः ॥ गर्भप्रश्नेयदादूतःपूर्णे-
पुत्रःप्रजायते ॥ २९५ ॥

अर्थ-चंद्रस्वरमें गर्भ विषयका प्रश्न करै तो कन्या, सूर्यस्वरमें पुत्र, सुषुम्ना अर्थात् दोनो स्वर चलते होवें तो नपुंसक होता है. प्रश्न करनेवाला दूतने पूर्ण अंगकी तर्फ आके प्रश्न किया हो तो पुत्र होता है ऐसा जानना ॥ २९५ ॥

शून्येशून्यंयुगेयुग्मंगर्भपातश्चसंक्र-
मे ॥ तत्ववित्सविजानीयात्कथितं
तत्तुसुंदरि ॥ २९६ ॥

अर्थ-हे सुंदरि ! शून्यस्वरमें आके, प्रश्न किया तो शून्य जानना और दोनों स्वर चलते हों तो दो होंगे, सुषुम्ना नाडी चलतेमें जो पूंछे तो गर्भपात होता है, ऐसा मैने कहा है वह तत्ववेत्ता लोग जानै ॥ २९६ ॥

गर्भाधानंमारुतेस्याच्चदुःखीदिक्षुख्या-
तोवारुणेसौख्ययुक्तः ॥ गर्भस्त्रावः
स्वल्पजीवश्चवन्हौभोगीभव्यःपार्थि-
वेनार्थयुक्तः ॥ २९७ ॥

अर्थ–वायुतत्वमें जो गर्भाधान हुवा होवे तो पुत्र दुःखी होता है, जलतत्वमें होवे तो दिशाओंमें प्रसिद्ध या सुखसे युक्त होता है, अग्नितत्वमें होवे तो गर्भपात अथवा थोड़ा जीनेवाला होता है. और पृथ्वीतत्वमें गर्भ होवे तो भोगी, भव्य, धनवान् ऐसा पुत्र होता है ॥ २९७ ॥

धनवान्सौख्ययुक्तश्चभोगवानर्थसं-
स्थितिः ॥ स्यान्नित्यंवारुणेतत्वेव्यो-
म्निगर्भोविनश्यति ॥ २९८ ॥

अर्थ–जलतत्वमें जो गर्भ रहा हो तो वह पुत्र धनवान्, सुख संपन्न, भोगयुक्त, द्रव्यस्थितकरनेवाला होता है. और आकाशतत्वमें रहा हुवा गर्भ नाशको प्राप्त होता है ॥ २९८ ॥

माहेंद्रेसुसुतोत्पत्तिर्वारुणेदुहिताभवे-
त् ॥ शेषेषुगर्भहानिःस्याज्जातमात्र-
स्यवामृतिः ॥ २९९ ॥

अर्थ--पृथ्वीतत्वमें गर्भ रहनेसे पुत्र उत्पन्न होता है, जलतत्वमें कन्या होती है. और अन्य तत्वोंमें

गर्भाधान हुवा हो तो गर्भका नाश होता है. अथवा उत्पन्न होतेही मरणको प्राप्त होता है यह दूसरा मत कहा है ॥ २९९ ॥

रविमध्यगतश्चंद्रश्चंद्रमध्यगतो-
रविः ॥ ज्ञातव्यंगुरुतःशीघ्रंनवे-
दशास्त्रकोटिभिः ॥ ३०० ॥

इतिगर्भप्रकरम्

अर्थ–सूर्यस्वरमें जो चंद्रस्वर चलनें लगै और चंद्रस्वरमें सूर्यस्वर चलने लगै तो गुरुसे शीघ्रही जानै. कारण कि गुरु शिवाय करोड़ों शास्त्र वेद पढ़नेसे इसका ज्ञान नहीं होता है ॥ ३०० ॥

अथसंवत्सरफलम्.

चैत्रशुक्लप्रतिपदिप्रातस्तत्ववि-
भेदतः ॥ पश्येद्विचक्षणोयोगीद-
क्षिणेचोत्तरायणे ॥ ३०१ ॥

अर्थ–चैत्र शुक्क पक्षकी प्रतिपदाको प्रातःकाल तत्वोंके भेदसे विचक्षण योगी दक्षिणायनमें वा उत्तरायणमें देखै अर्थात् संवत्सर फलको विचारै ॥३०१॥

चंद्रोदयस्यवेलायांवहमानाऽथतत्व-
तः ॥ पृथिव्यापस्तथावायुःसुभिक्षं
सर्वसस्यजम् ॥ ३०२ ॥

अर्थ–चंद्रस्वर चलते बखत प्रातःकाल चंद्रस्वरमें

पृथ्वी, जल, वायु ये तत्वें चलते हों तो सुभिक्ष होता है और सर्व प्रकारकी खेतियां उत्पन्न होतीं हैं॥३०२॥

तेजोव्योम्नोर्भयंघोरंदुर्भिक्षंकाल-
तत्वतः॥ एवंतत्वफलंज्ञेयंवर्षेमा-
सेदिनेष्वपि ॥ ३०३ ॥

अर्थ—अग्नि, आकाश ये तत्वें चलते होवें तो घोर भय वा दुर्भिक्ष होवे ऐसे. काल, स्वर, तत्व इन्होंसे वर्ष, महीना, दिन इन्होंके स्थानमें तत्वोंसे-ही फल जानै ॥ ३०३ ॥

मध्यमाभवतिक्रूरादुष्टासर्वेषुकर्म-
सु ॥ देशभंभमहारोगक्लेशक-
ष्टादिदुःखदा ॥ ३०४ ॥

अर्थ—मध्य नाड़ी (सुषुम्ना) क्रूर है और सर्व कार्योंमें दुष्ट है देशभंग, महारोग, क्लेश, कष्ट इत्या-दिक अनेक दुःखोंके देनेवाली है ॥ ३०४ ॥

मेषसंक्रांतिवेलायांस्वरभेदंविचार-
येत् ॥ संवत्सरफलंब्रूयाल्लोकानां-
तत्वचिंतकः ॥ ३०५ ॥

अर्थ—मेषसंक्रांतिके समयमें स्वर भेदको विचारै फिर स्वरसेही लोगोंके तत्वको चिंतन कर संवत्सरके फलको कहै ॥ ३०५ ॥

पृथिव्यादिकतत्वेनदिनमासाब्द-

फंजलम् ॥ शोभनंचयथादुष्टंव्यो-
ममारुतवन्हिभिः ॥ ३०६ ॥

अर्थ–पृथिव्यादिक तत्वोंसे दिन, मास, वर्ष इन्होंका फल जानै तहां पृथ्वी, जल ये तत्वें चलते हों तो शुभ फल और आकाश, वायु, अग्नि इन तत्वोंमें दुष्ट फल जाने ॥ ३०६ ॥

सुभिक्षंराष्ट्रवृद्धिःस्याद्बहुसस्यावसुं-
धरा ॥ बहुवृष्टिस्तथासौख्यंपृथ्वी-
तत्वंवहेद्यदि ॥ ३०७ ॥

अर्थ–जो पृथ्वीतत्व चलता होवे तो सुभिक्ष, देशकीवृद्धि, पृथ्वीमें बहुतसी खेती उत्पन्न होवे, बहुत बर्षा होवे, सुखभी प्राप्त होवे ॥ ३०७ ॥

अतिवृष्ठिःसुभिक्षंस्यादारोग्यंसौ-
ख्यमेवच ॥ बहुसस्यातथापृथ्वी
आप्तत्वंवैवहेद्यदि ॥ ३०८ ॥

अर्थ–जो जलतत्व चलता होवे तो बहुत बर्षा सुकाल, आरोग्य, सुख, पृथ्वीमें बहुतसा धान्य उत्पन्न होवे ॥ ३०८ ॥

दुर्भिक्षंराष्ट्रभंगःस्यादुत्पत्तिश्चवि-
नश्यति ॥ अल्पादल्पतरावृष्टिर-
ग्नितत्वंवहेद्यदि ॥ ३०९ ॥

अर्थ–जो अग्नितत्व चलता हो तो दुर्भिक्ष,

देशका नाश, संततिवा धान्यकी उत्पत्तिका नाश, बहुत थोड़ी बर्षा यह फल होता है ॥ ३०९ ॥

उत्पातोपद्रवाभीतिरल्पावृष्टिःस्यु-
रीतयः॥ मेषसंक्रांतिवेलायांवायु-
तत्वंवहेद्यदि ॥ ३१० ॥

अर्थ–उल्कापातादिक अरिष्ट, अनेकों प्रकारके उपद्रव, भय, थोड़ी वर्षा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, इत्यादि विघ्न मेष संक्रांतिके समय जो वायुतत्व चलता होवे तो होते हैं ॥ ३१० ॥

मेषसंक्रांतिवेलायांव्योमतत्वंवहे-
द्यदि ॥ तत्रापिशून्यताज्ञेयासस्या-
दीनांसुखस्यच ॥ ३११ ॥

अर्थ–मेषसंक्रांतिके समय जो आकाशतत्व चलता होवे तो तहांभी धान्यादिकोंकी वा सुखकी शून्यता जाननी ॥ ३११ ॥

पूर्णप्रवेशनेश्वासेसस्यंतत्वेनसि-
द्ध्यति ॥ सूर्यचंद्रेन्यथाभूतेसंग्र-
हःसर्वसिद्धिदः ॥ ३१२ ॥

अर्थ–पूर्णस्वरको अंदर प्रवेश करनेपर तत्वोंसे धान्यकी सिद्धि होती है परंतु तत्वोदयके समय सूर्य, चंद्र ये स्वर जो विपरीत होवें तब अन्नका संग्रह करै तो लाभ प्राप्त होता है ॥ ३१२ ॥

विषमेवह्नितत्वंस्याज्ज्ञायतेकेवलं
नभः ॥ तत्कुर्याद्वस्तुसंग्राहोद्वि-
मासेचमहर्घता ॥ ३१३ ॥

अर्थ–जो विषम अर्थात् सूर्यस्वरमें तेजतत्व च-
लता होवे और केवल आकाशतत्व वहता हुवा जाना
जावे तो अन्नादिक वस्तुओंका संग्रह करना. कारण
दो महींनेमें सब वस्तु महँगी होवेंगी ॥ ३१३ ॥

रवौसंक्रमतेनाडीचंद्रमंतेप्रसर्पि-
ता ॥ खानिलेवन्हियोगेनरौरवं
जगतीतले ॥ ३१४ ॥

॥ इतिसंवत्सरप्रकरणम् ॥

अर्थ–(रात्रिमें) संक्रांति अर्क होय तव सूर्यस्वर
बहता होवे और प्रातःकाल चंद्रस्वर बहता हो फिर
इन्होंमें आकाश, वायु, अग्नि ये तत्वें चलते होवें
तो पृथ्वीतलमें अनेक प्रकारके अनर्थ वा दुःख
होवें ॥ ३१४ ॥

॥ अथरोगप्रकरणम् ॥

महीतत्वेस्वरोगश्चजलेचजलमा-
तृतः॥ तेजसिखेटवाटीस्थशाकि-
नीपितृदोषतः ॥ ३१५ ॥

अर्थ–पृथ्वीतत्व चलते समय रोग विषयका
प्रश्न किया होवे तो प्रारब्धरोग समझना जलतत्व

चलता होवे तो जलमातृका संबंधी पीड़ा जानना, तेजतत्व चलता होवे तो ग्राम पर्वत इत्यादिकमें रहनेवाली शाकिनी वा पितरोंका दोष है ऐसा जानना ॥ ३१५ ॥

**आदौशून्यगतोदूतःपश्चात्पूर्णेवि-
शेद्यति ॥ मूर्च्छितोऽपिध्रुवंजीवेद्य
दर्थंप्रतिपूच्छति ॥ ३१६ ॥**

अर्थ–प्रश्न करनेवाला दूत प्रथम शून्य अंगमें अर्थात् जो स्वर न चलता हो उस तर्फ आके बैठा होवे फिर पूर्ण अंगमें जो जाके बैठे तो जिसके लिये पूंछता है वह मनुष्य मूर्च्छित हुवाभी निश्चय जीवता है ॥ ३१६ ॥

**यस्मिन्नंगेस्थितोजीवस्तत्रस्थःपरि-
पृच्छति ॥ तदाजीवतिजीवोऽसौ-
यदिरोगैरुपद्रुतः ॥ ३१७ ॥**

अर्थ–जिस अंगमे जीवस्वर स्थित होवे उसी अंगकी तर्फ बैठके प्रश्न करै तो वह मनुष्य अनेक रोगोंके उपद्रवोंसे युक्त हुवाभी जीवता है ॥ ३१७ ॥

**दक्षिणेनयदावायुर्दूतोरौद्राक्षरोव-
देत् ॥ तदाजीवतिजीवोऽसौचंद्रे
समफलंभवेत् ॥ ३१८ ॥**

अर्थ–जो दहिना स्वर चलता होवे उस समय

दूत आके भयानक बचन बोले तो वह रोगी जीवता है और क्रूरभाषण समय जो चंद्रस्वर चलता होवे तो समान फल होता है ॥ ३१८ ॥

जीवाकारंचवाधृत्वाजीवाकारंविलो-
कयच ॥ जीवस्थोजीवितप्रश्नेतस्य
स्याज्जीवितंफलम् ॥ ३१९ ॥

अर्थ–जीवके स्वरूपको हाथसे पकड़के, जीवका स्वरूप देखके, जीवमें स्थित हुआ जो दूत जीवन विषयी प्रश्न करै तो तिसको जीनेका फल होता है ॥ ३१९ ॥

वामचारेतथादक्षप्रवेशोयत्रवाहने ॥
तत्रस्थःपृच्छतेदूतस्तस्यासिद्धिर्न
संशयः ॥ ३२० ॥

अर्थ–वामस्वर किंवा दहिने स्वरको अंदरको प्रवेश होते समय दूत जीवांगकी तर्फ स्थित होके पूछता है तो तिस रोगीकी सिद्धि होती है इसमें संशय नहीं ॥ ३२० ॥

प्रश्नेचाधःस्थितोजीवोनूनंजीवोहि
जीवति ॥ ऊर्ध्वचारस्थितोजीवोजी-
वोयातियमालम् ॥ ३२१ ॥

अर्थ–पूछनेके समय प्रश्न करनेवाला दूत जो नीचे स्थित होवे तो रोगी जीवता है और जो

ऊपर स्थित होके प्रश्न करता है तो वह रोगी निश्चय यमराजके स्थानको प्राप्त होता है ॥ ३२१ ॥

विपरीताक्षरप्रश्नेरिक्तायांपृच्छको-
यदि ॥ विपर्ययंचविज्ञेयंविषमस्यो-
दयेसति ॥ ३२२ ॥

अर्थ–विपरीत अक्षरोंक प्रश्न करके जो पूछने वाला रिक्तनाड़ीकी तर्फ स्थित हो और तिस समय विषम (सुषुम्ना) नाड़ीका उदय होवे तो बिपरीत जानना ॥ ३२२ ॥

चंद्रस्थानेस्थितोजीवःसूर्यस्थानेतु
पृच्छकः ॥ तदाप्राणवियुक्तोऽसो-
यदिवैद्यशतैर्वृतः ॥ ३२३ ॥

अर्थ–जीव (प्राणवायु) चंद्रमाके स्थानमें होवे और पूछने वालेका प्राणवायु सूर्यस्थानमें होवे तो शतावधि वैद्योंसे युक्त हुवाभी रोगी मरणको प्राप्त होता है ॥ ३२३ ॥

पिंगलायांस्थितोजीवोवामेदूतस्तु
पृच्छति ॥ तदाऽपिम्रियतेरोगीय-
दित्रातामहेश्वरः ॥ ३२४ ॥

अर्थ–श्वासवायु पिंगला नाड़ीमें होवे और दूत वामभागमें बैठके,रोगका प्रश्न पूछे तो जो साक्षात् शंकरजीभी रक्षा करैं तोभी रोगी मरणको प्राप्त होता है॥३२४॥

एकस्यभूतस्यविपर्ययेणरोगाभिभूतिर्भवती-
हपुंसाम् ॥ तयोर्द्वयोर्बंधुसुहृद्विपत्तिःपक्षद्वये
व्यत्ययतोमृतिःस्यात् ॥ ३२५ ॥

॥ इति रोगप्रकरणम् ॥

अर्थ–एकतत्वके विपरीत होनेसे पुरुषोंको बहुत प्रकारके उपद्रव होते हैं. और दो तत्वोंके विपरीत होनेसे बंधु मित्रोंका दुःख होता है, और एक महीनातक जो विपरीत तत्व रहै तो मरण होता है। ३२५

॥ अथ कालप्रकरणम् ॥

मासादौचैवपक्षादौवत्सरादौयथाक्रम-
म् ॥ क्षयकालंपरीक्षेतवायुचारवशा-
त्सुधीः ॥ ३२६ ॥

अर्थ–बुद्धिमान् पुरुष महीना, पक्ष, वर्ष इनकी आदिमें क्रमसे वायुके संचार बशसे मरणकालकी परीक्षा करै ॥ ३२६ ॥

पंचभूतात्मकंदीपंशिवस्नेहेनसे-
चितम् ॥ रक्षयेत्सूर्यवातेनप्राणि
जीवःस्थिरोभवेत् ॥ ३२७ ॥

अर्थ–यह पंचभूतात्मक दीप (शरीर) शिवरूपी अर्थात् श्वासरूपी तैलसे सींचागया है इसको सूर्य (स्वर) रूपी वायुसे जो रक्षा करता है तिससे प्राणी स्थिर होता है ॥ ३२७ ॥

मारुतंबंधयित्वातुसूर्यंबंधयतेयदि ॥ अभ्यासाज्जीवतेजीवः सूर्यकालेऽपि वंचिते ॥ ३२८ ॥

अर्थ–जो प्राणवायुको रोकके, (दिनभर) सूर्यस्वर बंद करता है और सूर्यास्त भये पर सूर्यस्वरको चलने देता है ऐसे अभ्याससे मनुष्य बहुत दिन जीवता है ॥ ३२८ ॥

गगनात्स्रवतेचंद्रःकायपद्मंविकास-येत् ॥ कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात् ॥ ३२९ ॥

अर्थ–ऐसे अभ्यासमें लगे हुये योगीके चंद्रमा आकाशसे मस्तकपर अमृत गिराता है. फिर शरीर रूपी कमलको प्रफुल्लित करता है ऐसे कर्मयोगसे सदा अभ्याससे चंद्रमाके आश्रय करनेसे योगी अमर होता है ॥ ३२९ ॥

शशांकंवारयेद्रात्रौदिवावार्योदिवा-करः ॥ इत्यभ्यासरतोनित्यंसयोगी नात्रसंशयः ॥ ३३० ॥

अर्थ–जो रात्रिमें चंद्रस्वरको निवारण करता है और दिनमें सूर्यस्वरको निवारण करता है ऐसे अभ्यासमें हमेशैं लगा हुवा मनुष्य योगी होता है इसमे संशय नहीं ॥ ३३० ॥

अहोरात्रंयदैकत्रवहतेयस्यमारु-
तः ॥ तदातस्यभवेन्मृत्युःसंपूर्णे-
वत्सरत्रये ॥ ३३१ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यका श्वास वायु रातदिन एक-स्वरमेंही बहता हो तो तीन वर्ष पूरे होते ही उसकी मृत्यु होवे ॥ ३३१ ॥

अहोरात्रद्वयंयस्यपिंगलायांसदा
गतिः ॥ तस्यवर्षद्वयंप्रोक्तंजीवि-
तंतत्ववेदिभिः ॥ ३३२ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यका श्वास दो दिनतक पिंगला नाड़ी अर्थात् दहिनी नाड़ीमें वायुकी गति हमेशैं रहै उसकी आयुष्य तत्ववेत्ता जनोंने दो वर्षकी कही है ॥ ३३२ ॥

त्रिरात्रंवहतेयस्यवायुरेकपुटेस्थि-
तः ॥ तदासंवत्सरायुस्तंप्रवदंति-
मनीषिणः ॥ ३३३ ॥

अर्थ–जिस पुरुषका श्वास वायु एकही नासिका पुटमें तीनरात्रि वहता है तो उसकी एकवर्षकी आयुष्य विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ३३३ ॥

रात्रौचंद्रोदिवासूर्योवहेद्यस्यनिरंत-
रम् ॥ जानीयात्तस्यवैमृत्युःषण्मा-
साभ्यंतरेभवेत् ॥ ३३४ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यका रात्रिमें चंद्रस्वर और दिनमें सूर्यस्वर निरंतर बहै तो छह महीनोंके भीतर तिसकी मृत्यु निश्चय होवे ऐसा जानना ॥ ३३४ ॥

लक्ष्यंलक्षितलक्षणेनसलिलंभानुर्यदादृश्यते। क्षीणोदक्षिणपश्चिमोत्तरपुरःषट्त्रिद्विमासैकतः ॥ मध्यंछिद्रमिदंभवेद्दशदिनंधूमाकुलंतद्दिने ॥ सर्वज्ञैरपिभाषितंमुनिवरैरायुःप्रमाणं स्फुटम् ॥ ३३५ ॥

अर्थ--कांसीके पात्रमें पानीको डालके सूर्यका प्रतिबिंब दिखावै वह प्रतिबिंब दक्षिण दिशामें क्षीण दीखे तो छहमहीनोंमें उसकी मृयु, पश्चिम दिशामें क्षीण दीखे तो तीन महीनोंमें मृत्यु, उत्तर दिशामें क्षीण दीखे तो दो महीनोंमें मृत्यु, पूर्वमें क्षीण दीखे तो एक महीनेमें मृत्यु, जो बीचमें छिद्र दीखे तो १० दिनमें मृत्यु, और धूमसे आच्छादित दीखे तो उसी दिन मृत्यु होवे ऐसे सर्वज्ञ मुनिजनोंने मनुष्योंका आयु प्रमाण स्फुट कहा है ॥ ३३५ ॥

दूतोरक्तकषायकृष्णवसनोदंतक्षतोमुंडितस्तैलाभ्यक्तशरीररज्जुककरोदीनश्चपूर्णोत्तरः ॥ भस्मांगारकपालपाशमुशलीसूर्यास्तमायातियःकालीशून्यपदास्थितोगदयुतःकालानलस्याद्दतः ॥ ३३६ ॥

अर्थ--दूत, लाल, भगवां, वा काले बस्त्र पहिने हुये, टूटे दांतवाला, (अर्थात् वोड़ा) मुंडन करायें हुयें, शरीरमें तैल लगाये हुयें अथवा हाथमें रस्सी लिये हुयें, दीन पूर्णोत्तर अर्थात् वातका जुबाब दे देवे ऐसा आया तो व्यर्थ होता है और भस्मअग्निके अंगार कपाल, पाश और मुसल इन्होंको लेके सूर्य अस्त होते समय जो आवे और जो स्वर न चलता हो उसतर्फ आके बैठे रोगसै युक्त वह दूत कालाग्नि-के समान है ॥ ३३६ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषो-
त्तमः ॥ अकस्मादिंद्रियोत्पातःसन्नि-
पाताग्रलक्षणम् ॥ ३३७ ॥

अर्थ–जिस रोगीका अकस्मात् चित्त बिगड़जाय और एकाएकी उत्तम पुरुष होजाय अथवा एकाएकी जिसके इंद्रियोंका उत्पात (दुश्चिन्ह) होवे तिसके सन्निपातके पूर्वरूप लक्षण जानना ॥ ३३७ ॥

शरीरंशीतलंयस्यप्रकृतिर्विकृताभ-
वेत् ॥ तदरिष्टंसमासेनव्यासतस्तु-
निबोधमे ॥ ३३८ ॥

अर्थ–जिसका शरीर अकस्मात ठंढा होवे और स्वभाव विलक्षण हो जावे वह संक्षेपसे अरिष्ट कहा है अब विस्तार पूर्वक मुझसे जानो ॥ ३३८ ॥

दुष्टशब्देषुरमतेशुद्धशब्देषुचात्म-
नि ॥ पश्चात्तापोभवेद्यस्यतस्यमृ-
त्युर्नसंशयः ॥ ३३९ ॥

अर्थ–जो मनुष्य दुष्ट (खराब) शब्दोंमें रमता है और शुद्धशब्दोंमें जिसके आत्माको पश्चात्ताप होवे तिसकी मृत्यु होती है इसमें संदेह नहीं ॥ ३३९ ॥

हुंकारःशीतलोयस्यफूत्कारोवन्हिस-
न्निभः ॥ महावैद्योप्यवेद्यस्यतस्यमृ-
त्युर्भवेत्ध्रुवम् ॥ ३४० ॥

अर्थ–जिसका हुंकार ठंढा होय और मुखसे निकला फूत्कार अग्निके समान तप्त होवे तिसका महान् वैद्य रक्षा करनेवाला हो तोभी निश्चय मृत्यु होती है ॥ ३४० ॥

जिव्हांविष्णुपदंध्रुवंसुरपदंसन्मातृकामंड-
लमेतान्येवमरुंधतीममृतगुंशुक्रंत्वगस्त्य-
क्षणम् ॥ एतेष्वेकमपिस्फुटंनपुरुषःपश्ये-
त्पुरःप्रेषितंसोऽवश्यंविशतीहकालवदनंसं-
वत्सरादूर्ध्वतः ॥ ३४१ ॥

अर्थ–जो पुरुष जीभ, आकाश, ध्रुव, देवतोंका-मार्ग, मातृकामंडल, अरुंधती, चंद्रमा, शुक्र और अगस्त्य इन्होंमें एककोभी स्पष्ट न देखे तो वह पुरुष एकबर्षके उपरांत अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है।३४१।

अरश्मिबिंबंसूर्यस्यवन्हेःशीतांशु-
मालिनः ॥ दृष्ट्वैकादशमासायुर्न-
रश्चोर्ध्वंनजीवति ॥ ३४२ ॥

अर्थ--जिस मनुष्यको सूर्य, चंद्रमाके प्रतिबिंबकी किरणें न दीखें, और अग्निकोभी निस्तेज देखे ऐसा मनुष्य ग्यारह महीनेके पीछे नहीं जीता है ॥ ३४२ ॥

वाप्यांपुरीषमूत्राणिसुवर्णरजतंत-
था ॥ प्रत्यक्षमथवास्वप्नेदशमा-
सान्नजीवति ॥ ३४३ ॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्नमें अथवा जागृत अवस्थामें बावड़ीमें मल; मूत्रको त्याग करता है वा सोना चांदी इनको देखे तो वह दश महीनेके उपरांत नहीं जी-वता है ॥ ३४३ ॥

क्वचित्पश्यतियोदीपंसुवर्णंचकषा-
न्वितम् ॥ विरूपाणिचभूतानिनवमा-
सान्नजीवति ॥ ३४४ ॥

अर्थ–जो पुरुष दीपकको कभी तो सुवर्णकी समान रंगवाला देखे और कभी कृष्णवर्ण सरीखा देखे वा सर्व भूतोंको विपरीत (विरूप) देखे वह नव महीनेतक नहीं जीवता है ॥ ३४४ ॥

स्थूलांगोऽपिकृशःकृशोऽपिसहसास्थूलत्व-
मालभ्यतेप्राप्तोवाकनकप्रभांयदिभवेत्क्रूरो

ऽपिकृष्णच्छविः॥शूरोभीरुरधर्मगोपिनि-
पुणःशांतोविलोलःपुमानित्येवंप्रकृतिःप्र-
यातिविकृतिंमासाष्टकंजीवति ॥ ३४५ ॥

अर्थ–और जो स्थूल अंगवालाभी एकदम दुबला हो जावे, और दुबलाभी एकदम स्थूल हो जावे, क्रूर वा कालेरंगवालाभी मनुष्य एकाएकी सुवर्णकी समान कांतिवाला होजावे, कभी शूरबीर होके डरपोंक होजावे और धार्मिक अधार्मिष्ट हो जावे वा शांत चंचल हो जाय इस प्रकार जिसकी प्रकृति विकारवान् हो जाय वह पुरुष आठ महीनोंतक जीवता है।३४५

पीडाभवेत्पाणितलेचजिव्हामूलेयथास्या-
द्रुधिरंचकृष्णम् ॥ विद्धंनचग्लायतियत्रदृ-
ष्टथाजीवेन्मनुष्यःसाहिसप्तमासम्॥३४६॥
मध्यांगुलीनांत्रितयंनवक्रंरोगंविनाशुष्यति
यस्यकंठः॥ मुहुर्मुहुःप्रश्नपरोतिजाड्यात्ष-
ड्भिःसमासैःप्रलयंप्रयाति ॥ ३४७ ॥

अर्थ–जिस पुरुषकी हाथकी हथेलीमें और जीभके मूलमें पीड़ा होवे रक्त काला होजाय और जिसके देहमें कोचने आदिकसे पीड़ा नहीं खबर परै वह मनुष्य सातही महीनेतक जीवता है ॥ ३४६ ॥ जिसकी बीचकी तीन अंगुली टेढ़ी न होवें

और रोगके बिनाहीं जिसका कंठ सूख जावे औ बारं बार जड़तासे प्रश्न करता है ऐसा मनुष्य छह महींनेसे मरणको प्राप्त होता है ॥ ३४७ ॥

नयस्यस्मरणंकिंचिद्विद्यतेस्तनचर्मणि ॥ सोऽवश्यंपंचमेमासिस्कंधारूढोभविष्यति ॥ ३४८ ॥

अर्थ–जिसकी स्तनोंकी चर्म बधिर होजावे वा जिसका कुछभी स्मरण न रहै वह पुरुष अवश्यही पांच महीनेमें मरणको प्राप्त होगा ॥ ३४८ ॥

यस्यनस्फुरतिज्योतिःपीड्यतेनयनद्वयम् ॥ मरणंतस्यानिर्दिष्टंचतुर्थेमासिनिश्चितम् ॥ ३४९ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यका आंखोंका तेज प्रकाश न हो और दोनो नेत्रोंमें पीड़ा होवे तिसका चौथे महीनेमें निश्चय मरण होगा ॥ ३४९ ॥

दंताश्चवृषणौयस्यनकिंचिदपिपीड्यते ॥ तृतीयमासतोवश्यंकालाज्ञायां भवेन्नरः ॥ ३५० ॥

अर्थ–जिसके दांत वा वृषण दाबनेसे दुःखी न होवें वह मनुष्य तीन महीनाके अनंतर अवश्य कालके स्वाधीन होता है अर्थात् मरता है ॥ ३५० ॥

कालोदूरस्थितोवापियेनोपायेनलक्ष्य-

ते ॥ तंवदामिसमासेनयथादिष्टंशि-
वागमे ॥ ३५१ ॥

अर्थ-मरणकाल दूर अथवा समीप है जिस उपायसे समझा जाय वह उपाय शिवशास्त्रमें जैसा कहा है वैसाही संक्षेपसे कहता हूं ॥ ३५१ ॥

एकांतंविजनंगत्वाकृत्वादित्यंच-
पृष्ठतः ॥ निरीक्षयेन्निजच्छायांकं-
ठदेशेसमाहितः ॥ ३५२ ॥

अर्थ-एकांत बनमें जाके, सूर्यको पीठ पीछे करके, सावधान हो अपनी छायाको कंठ देशमें देखे ॥३५२॥

ततश्चाकाशमीक्षेतह्रींपरब्रह्मणेन-
मः ॥ अष्टोत्तरशतंजप्त्वाततःप-
श्यतिशंकरम् ॥ ३५३ ॥

अर्थ-तिसके उपरांत आकाशको देखै फिर "ॐ ह्रीं परब्रह्मणेनमः" इस मंत्रका अष्टोत्तरशत १०८ जपके पीछे शंकरका दर्शन होता है ॥ ३५३ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशंनानारूपधरंहरम् ॥
षण्मासाभ्यासयोगेनभूचराणांपतिर्भवेत् ॥
वर्षद्वयेनतेनाथकर्त्ताहर्त्तास्वयंप्रभुः॥३५४॥

अर्थ-शुद्ध सफेद मणिके समान कांति और अनेकरूपधारी शंकरको देखता है छह महीनोंके अभ्यास योग करनेसे भूचर प्राणियोंका राजा होता

है ऐसे दो वर्ष अभ्यास करनेसे आपही सृष्टिकर्त्ता वा संहर्त्ता प्रभु होजाता है ॥ ३५४ ॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोतिपरमानंदमे-
वच ॥ सतताभ्यासयोगेननास्ति-
किंचित्सुदुर्लभम् ॥ ३५५ ॥

अर्थ--और ऐसा हमेशैं अभ्यास करनेसे त्रिकाल-ज्ञान प्राप्त होता है और परमानंद होता है अर्थात् तिसको कुछभी दुर्लभ नहीं रहता ॥ ३५५ ॥

तद्रूपंकृष्णवर्णंयःपश्यतिव्योम्नि
निर्मले ॥ षण्मासान्मृत्युमाप्नोति
सयोगीनात्रसंशयः ॥ ३५६ ॥

अर्थ–जो योगी उस शिवजीके रूपको निर्मल आकाशमें कृष्णवर्ण देखै वह योगी छह महीनोंके भीतर मृत्युको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं॥३५६॥

पीतेव्याधिंभयंरक्तेनीलेहानिंच
निर्दिशेत् ॥ नानावर्णोथचेत्तस्मि-
न्सिद्धश्चगीयतेमहान् ॥ ३५७ ॥

अर्थ–और पीलारूप देख पड़े तो व्याधि, लाल दीखे तो भय, नीलेमें हानि जानना और जो अनेक प्रकारके रंग दीखें तो वह योगी सिद्धिको प्राप्त होता है ३५७ ॥

पदेगुल्फेचजठरेविनाशःक्रमशो-

भवेत् ॥ विनश्यतोयदाबाहूस्वयं
तुम्रियतेध्रुवम् ॥ ३५८ ॥

अर्थ—जो छायामें पैर, घुटने और पेट इन्होंका क्रमसे नाश दीखे वा दोनों हाथ कटे दीखें तो वह निश्चय आप मरता है ॥ ३५८ ॥

वामबाहौतथाभार्यानश्येन्नष्टेनसं-
शयः ॥ दक्षिणेबंधुनाशोहिमृत्यु-
मात्मविनिर्दिशेत् ॥ ३५९ ॥

अर्थ—बायें हाथका नाश दीखे तो स्त्रीनाश होती है और दहिने हाथका नाश दीखे तो बंधु नाश होके, निःसंशय अपनीभी मृत्यु होवे ऐसा जानना ॥ ३५९ ॥

अशिरोमासमरणंविनाजंघेदिनाष्ट-
कम् ॥ अष्टाभिःस्कंधनाशेनछाया-
लोपेनतत्क्षणात् ॥ ३६० ॥

अर्थ—और छायामें जो मस्तक न दीखे तो महीनाभरमें मरण और जो जंघा रहित दीखे तो आठ दिनमें मरण कंधा न दीखें तोभी आठ दिनमें मरण और एकदम सब छाया न दीखे तो उसी क्षण मरण प्राप्त होवे ॥ ३६० ॥

प्रातःपृष्ठगतेरवौचनिमिषाच्छायांगुलीश्चा-
धरंदृष्ट्वार्धेनमृतिस्त्वनंतरमहोच्छायानरंप-

इयति ॥ तत्कर्णांसकरास्यपार्श्वहृदयाभावे क्षणार्धात्स्वयंदिङ्मूढोहिनरःशिरोविगमतोमासांस्तुषड्जीवति ॥ ३६१ ॥

अर्थ–प्रातःकाल सूर्यको पीठपीछे करके छायाको देखे तहां अँगुली वा नीचेका ओष्ठ न दीखे तो एक निमिषमात्रमें मृत्यु होती है और जो छाया पुरुषको अथवा अपनेको न देखे तो आधे निमिषमें मरण प्राप्त होवे और छाया पुरुषके कान, कंधे, हाथ, मुख, पखौरा, वा हृदय इनको न देखे तो आधे क्षणमें मरण होता है. और छायापुरुषका शिर नष्ट होके पुरुषको दिशाओंकी खबर न रहै तो छह महीना जीता है ॥ ३६१ ॥

एकादिषोडशाहानियदिभानुर्निरंतरम् ॥ वहेत्तस्यभवेन्मृत्युःशेषाहेनचमासिके ॥ ३६२॥

अर्थ–जिस मनुष्यका एक दिनसे लेके सोलह दिन पर्यंत जो निरंतर सूर्यस्वरही बहता रहै तो तिसकी महीनाके भीतर मृत्यु होती है ॥ ३६२ ॥

संपूर्णवहतेसूर्यश्चंद्रमानैवदृश्यते ॥ पक्षेणजायतेमृत्युःकालज्ञेनानुभाषितम् ॥ ३६३ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके हमेशैं सूर्यस्वरही चले

और चंद्रस्वर कभी न दीखे तिसकी पंद्रह दिनमें मृत्यु होती है ऐसा कालज्ञानियोंने कहा है ॥ ३६३ ॥

मूत्रंपूरीषंवायुश्चसमकालंप्रवर्तते ॥ तदाऽसौचलितोज्ञेयोदशाहेम्रियतेध्रुवम् ॥ ३६४ ॥

अर्थ—मूत्र, मल और वायु ये एकही समय निकसें तो प्राण चलित हुवा ऐसा जानना वह मनुष्य दश दिनमें निश्चय मरता है ॥ ३६४ ॥

संपूर्णवहतेचंद्रःसूर्योनैवचदृश्यते ॥ मासेनजायतेमृत्युःकालज्ञेनानुभाषितम् ॥ ३६५ ॥

अर्थ—जो हमेशैं चंद्रस्वर चलता हो और सूर्यस्वर कभी न चलता होवे तो तिस मनुष्यकी मृत्यु एक महीनेमें होती है ऐसा कालज्ञानियोंने कहा है ॥ ३६५ ॥

अरुंधतींध्रुवंचैवविष्णोस्त्रीणिपदानिच ॥ आयुर्हीनानपश्यंतिचतुर्थंमातृमंडलम् ॥ ३६६ ॥

अर्थ—अरुंधती, ध्रुव, विष्णुजीके पद ये तीन और चौथे मातृमंडल इनको आयुष्यहीन पुरुष नहीं देखते हैं ॥ ३६६ ॥

अरुंधतीभवेज्जिव्हाध्रुवोनासाग्र-

मेवच ॥ भ्रुवौविष्णुपदंज्ञेयंतार-
कंमातृमंडलम् ॥ ३६७ ॥

अर्थ–अरुंधती जीभ है ध्रुव नासिकाका अग्रभाग है भौंहोंको विष्णुपद कहते हैं और ताराओंको मातृ-मंडल ऐसा जानना ॥ ३६७ ॥

नवभ्रुवंसप्तघोषंपंचतारांत्रिनासि-
काम् ॥ जिव्हामेकदिनंप्रोक्तंम्रिय
तेमानवोध्रुवम् ॥ ३६८ ॥

अर्थ–भ्रुकुटी न दीखें तो नव दिनमें मरे कानोंमे शब्द न सुने तो सात दिनमें मरे तारा न दीखें तो पांच दिनमें मरे नासिका न दीखे तो तीन दिनमें मरे और जीभ न दीखे तो एक दिनमें मरण कहा है ऐसा जानना ॥ ३६८ ॥

कोणावक्ष्णोरंगुलिभ्यांकिंचित्पीड्य
निरीक्षयेत् ॥ यदानदृश्यतेबिंदुर्द-
शाहेनभवेन्मृतः ॥ ३६९ ॥

अर्थ–आंखोंके कोन दो अंगुलियोंसे थोड़ा दबाके, देखे जो दाबनेसे आंखोंमेसे जलकी बिंदु न दीखे तो मनुष्य दशदिनसे मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३६९ ॥

तीर्थस्नानेनदानेनतपसासुकृते-
नच ॥ जपैर्ध्यानेनयोगेनजायते
कालवंचना ॥ ३७० ॥

अर्थ–तीर्थोंका स्नान, दान,तप, पुण्य, जप, ध्यान, योग इन्होंके करनेसे काल हट जाता है ॥ ३७० ॥

शरीरंनाशयंत्येतेदोषाधातुमला-स्तथा ॥ समस्तुवायुर्विज्ञेयोब-लतेजोविवर्द्धनः ॥ ३७१ ॥

अर्थ–अनेक प्रकारके दुराचरण वा धातु तथा मल आदिक दोष ये शरीरको नाश करते हैं और सम, प्राण वायु बल वा तेजको बढ़ानेवाला है ॥ ३७१ ॥

रक्षणीयस्ततोदेहोयतोधर्मादिसाधनम्॥ रोगाजाप्यत्वमायांतिसाधिजप्यास्त्वऽसा-ध्यताम् ॥ असाध्याजीवितंघ्नंतिनतत्रा-स्तिप्रतिक्रिया ॥ ३७२ ॥

अर्थ–जो कि यह देह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन्होंका साधन है इस लिये यह देह रक्षा करने योग्य है (और जो पहले श्लोकोंमें दोष कहे हैं वे योगाभ्याससे नाशको प्राप्त होते हैं इससे योग करै) ज्वरादि रोगोंका इलाज न कियाजाय तो जाप्य संज्ञक होजाते हैं याने जवतक औषधी सेवनकरे तवतक शांतरहें औषधी वंदहोतेंही कुपित होजावें ऐसे जाप्य रोग इलाज न करनेसे असाध्य होजाते हैं फिर असाध्य हुवे तो जीवको मार देते हैं उसका कुछभी परिहार नहीं है ॥ ३७२ ॥

येषांहृदिस्फुरतिशाश्वतनाद्वितीयंतेजस्त-
मोनिवहनाशकरंरहस्यम् ॥ तेषामखंड-
शशिरम्यसुकांतिभाजांस्वप्नेऽपिनोभवति
कालभयंनराणाम् ॥ ३७३ ॥

अर्थ–जिन पुरुषोंके हृदयमें अनादि, अद्वितीय, तमोगुणके समूहको नाश करनेवाला, गोप्य ऐसा जब शिवस्वरोदय ज्ञान होता है तब पूर्ण चंद्रके समान कांतिवाले तिन पुरुषोंको स्वप्नमेंभी कालका भय नहीं होता है ॥ ३७३ ॥

इडागंगेतिविज्ञेयापिंगलायमुना
नदी ॥ मध्येसरस्वतींविद्यात्प्र-
यागादिसमस्तथा ॥ ३७४ ॥

अर्थ–इड़ा (बाम नाड़ी) गंगास्वरूप जाननी पिंगला (दक्षिण नाड़ी) यमुना नदी जाननी और बीचमें सुषुम्ना सरस्वती जाननी इन नाड़ित्रय संगमको प्रयागतुल्य जानना ॥ ३७४ ॥

आदौसाधनमाख्यातंसद्यःप्रत्यय-
कारकम् ॥ बद्धपद्मासनोयोगीबंध-
येदुड्डियानकम् ॥ ३७५ ॥

अर्थ–पहले तत्काल विश्वास उत्पन्न करनेवाला साधन कहा है इसी लिये योगीमनुष्य पद्मासन बांधके, उड्डियान नाम बंधको साधै अर्थात् अपा-

न वायु ऊपरको चढाके नाभिके समीप लावै इसे योगशास्त्रमें उड्डियानबंध कहते हैं ॥ ३७५ ॥

पूरकःकुंभश्चैवरेचकश्चतृतीयकः ॥ ज्ञातव्योयोगिभिर्नित्यंदेहसंशुद्धि-हेतवे ॥ ३७६ ॥

अर्थ-देह शुद्धिके लिये पूरक, कुंभक, रेचक ऐसे तीन प्रकारके प्राणायाम योगी जनोंने जानने चाहिये ॥ ३७६ ॥

पूरकःकुरुतेवृष्टिंधातुसाम्यंतथै-वच ॥ कुंभकेस्तंभनंकुर्याज्जीवर-क्षाविवर्द्धनम् ॥ ३७७ ॥

अर्थ-पूरक प्राणायाममें बाहरकी वायु भीतरमें खींची जाती है यह शरीरको गीला और धातुओंको समत्व करता है. कुंभकमें बाहर, भीतर, वायुको चंचल न होने देवे अर्थात् स्थिर करै तो जीवरक्षाकी वृद्धि होती है ॥ ३७७ ॥

रेचकोहरतेपापंकुर्याद्योगपदंव्र-जेत् ॥ पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबं-धंचकारयेत् ॥ ३७८ ॥

अर्थ-रेचकमें बाहरको वायु निकाली जाती है यह प्राणायाम पापको नाश करता है. ऐसे तीन प्राणायाम करनेवालेको योगपदकी प्राप्ति होती है

ऐसे प्राणायाम कर, पीछे समानरूपसे स्थिर रहै ऐसा योगी मृत्युको बंद करता है ॥ ३७८ ॥

कुंभयेत्सहजंवायुंयथाशक्तिप्रक-
ल्पयेत् ॥ रेचयेच्चंद्रमार्गेणसूर्येणा-
पूरयेत्सुधीः ॥ ३७९ ॥

अर्थ–ज्ञानवान् पुरुष अपने स्वाभाविक प्राणवायुको अपनी यथाशक्ति कुंभक करै अर्थात् कुंभक प्राणायाममें रोंकै और चंद्रस्वरसे वायुको छोड़ै सूर्यके स्वरसे चढ़ावे ॥ ३७९ ॥

चंद्रंपिबतिसूर्यश्चसूर्यंपिबतिचंद्रमाः॥
अन्योन्यकालभावेनजीवेदाचंद्रतार-
कम् ॥ ३८० ॥

अर्थ–चंद्रस्वरको सूर्यस्वर पान करै और सूर्यस्वरको चंद्रस्वर पान करै ऐसा योगी परस्पर स्वरके कालका अभाव होनेसे चंद्रमा वा तारागणोंकी जबतक स्थिति रहै तबतक जीवता है ॥ ३८० ॥

स्वीयांगेवहतेनाडीतन्नाडीरोधनं
कुरु ॥ मुखबंधममुंचन्वैपवनंजा-
यतेयुवा ॥ ३८१ ॥

अर्थ–अपने अंगमें जो नाड़ी चलती हो तिस नाड़ीको बंदकर और मुख बंदकर मुखसे वायुको न छोड़ै वह वृद्धभी योगी जवान हो जाता है॥३८१॥

मुखनासाक्षिकर्णांतानंगुलीभिर्नि-
रोधयेत् ॥ तत्वोदयमितिज्ञेयंषण्मु-
खीकरणंप्रियम् ॥ ३८२ ॥

अर्थ–मुख, नासिका, नेत्र, कान इनको अंगुलियोंसें ढांकै उसीको तत्वोदय जानना इस मुद्राको प्रियषण्मुखी करण ऐसा कहते हैं ॥ ३८२ ॥

तस्यरूपंगतिःस्वादोमंडलंलक्षणं
त्विदम् ॥ सवेत्तिमानवोलोकेसं-
सर्गादपिमार्गवित् ॥ ३८३ ॥

अर्थ–इस लोकमें उक्तमुद्राज्ञ योगीका लक्षण यह है कि यह योगी तत्वोंका रूप, गति, स्वाद, (रुचि) मंडल इन संपूर्णोंको जानता है और तत्वोंके मिलापके रास्तेकोभी जानता है ॥ ३८३ ॥

निराशोनिष्कलोयोगीनाकिंचिदपि
चिंतयेत्॥ वासनामुन्मनांकृत्वाका-
लंजयतिलीलया ॥ ३८४ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त मुद्रा करके इच्छारहित वा निष्पाप योगी कुछभी चिंतवन न करै मनसे सर्व वासनाओंका तिरस्कार कर क्रीड़ासे कालको जीतता है ॥ ३८४ ॥

विश्वस्यवेदिकाशक्तिर्नेत्राभ्यांपरिदृ-
श्यते ॥ तत्रस्थंतुमनोयस्ययाममा-

त्रंभवेदिह ॥ ३८५ ॥

अर्थ-तहां समाधिमें जिस योगीका मन एक प्रहर स्थिर होता है तिसको सर्व संसारको जाननेकी शक्ति केवल नेत्रोंसेही होती है ॥ ३८५ ॥

तस्यायुर्वर्धतेनित्यंघटिकात्रयमा-
नतः ॥ शिवेनोक्तंपुरातंत्रेसिद्धस्य
गुणगव्हरे ॥ ३८६ ॥

अर्थ-और तिसकी आयुष्य दररोज तीन घटिका प्रमाण बढ़ती है यह पहले सिद्धोंके गुणगव्हरतंत्रमें शिवजीने कहा है ॥ ३८६ ॥

बद्धंपद्मासनस्थागुदगतपवनंसन्निरुद्ध्या-
मुमुच्चैःतंतस्यापानरंध्रेक्रमजितमनिलंप्राण-
शक्त्यानिरुध्य॥एकीभूतंसुषुम्नाविवरमुपग-
तंब्रह्मरंध्रेचनीत्वानिक्षिप्याकाशमार्गे शिव-
चरणरतायांतितेकेऽपिधन्याः ॥ ३८७ ॥

अर्थ-योगी पुरुष पद्मासनको बांधके फिर गुदामें प्राप्त अपान वायुको रोंकके ऊपरको लेजाय अपान रंध्रमें क्रमसे जीती हुई तिस वायुको प्राणशक्तिसे रोंकके दोनोंको एक रूप कर, अनंतर सुषुम्ना नाड़ीके छिद्रमें प्राप्त कर, पीछे ब्रह्मरंध्रके ठिकाने प्राप्त कर, शिवचरणमें रत हुये वे योगी

आकाशमार्गमें जाते हैं अर्थात् प्राणोंको छोंड़ते हैं वेही धन्य हैं ॥ ३८७ ॥

एतज्ज्ञानातियोयोगीएतत्पठतिनि-
त्यशः ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तोलभते
वांछितंफलम् ॥ ३८८ ॥

अर्थ–जो योगी इस शिवस्वरोदयशास्त्रको जानता है और इसको नित्य पठन करता है वह सर्व दुःखोंसे छूटके इच्छितफलको प्राप्त होता है॥३८८॥

स्वरज्ञानंनरेयत्रलक्ष्मीःपादतलेभ-
वेत् ॥ सर्वत्रचशरीरेऽपिसुखंत-
स्यसदाभवेत् ॥ ३८९ ॥

अर्थ–जिस पुरुषमें स्वरज्ञान है उसके पैरोंके तलवोंमे लक्ष्मी वास करती है वा तिसके शरीरमें भी सर्वकाल सदा सुखही होता है ॥ ३८९ ॥

प्रणवःसर्ववेदानांब्राह्मणोभास्करो
यथा ॥ मृत्युलोकेतथापूज्यःस्वर-
ज्ञानीपुमानपि ॥ ३९० ॥

अर्थ–सर्व वेदोंमें जैसे ॐकार पूज्य, और ब्राह्मण वा सूर्य जैसे पूज्य, तैसेही स्वरज्ञानी पुरुषभी मृत्युलोकमें पूज्य है ॥ ३९० ॥

नाडित्रयंविजानातितत्वज्ञानंतथै-
वच ॥ नैवतेनभवेतुल्यंलक्षको-

टिरसायनम् ॥ ३९१ ॥

अर्थ–तीनों नाड़ी और तत्वोंका ज्ञान जो जानता है उस मनुष्यकी समताको लक्षों करोड़ों रसायन कोईभी नहीं पहुंचती हैं ॥ ३९१ ॥

एकाक्षरप्रदातारंनाडीभेदविवेचकम् ॥ पृथिव्यांनास्तितद्द्रव्यंयद्दत्वाचानृणोभवेत् ॥ ३९२ ॥

अर्थ–एक अक्षर (अद्वितीय अनंत ब्रह्म) का जिसने उपदेश किया है और नाड़ीका भेद जिसने विवेचन कर कहा है तिसको ऐसा कोई द्रव्य नहीं है कि जो देके शिष्य ऋणमुक्त होवे ॥ ३९२ ॥

स्वरतत्वंतथायुद्धंदेविवश्यंस्त्रियस्तथा ॥ गर्भाधानंचरोगश्चकलार्द्धेनैवमुच्यते ॥ ३९३

अर्थ–हे देवि! इस शास्त्रमें स्वर, तत्वें, युद्ध, स्त्रियोंका वशीकरण, गर्भाधान और रोग इस विषयका निर्णय एक अर्द्ध कलासे किया जाता है॥३९॥

एवंप्रवर्तितंलोकेप्रसिद्धःसिद्धयोगिभिः ॥ चंद्रार्कग्रहणेजाप्यंपठतांसिद्धिदायकम् ॥ ३९४ ॥

अर्थ--इस प्रकार इस लोकमें प्रवृत्त हुवा सिद्ध योगियोंने प्रकाशित किया यह स्वरोदय शास्त्र चंद्र

वा सूर्य ग्रहणमें जप किंवा पठन करनेसे सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ३९४ ॥

स्वस्थानेतुसमासीनोनिद्रांचाहारमल्पयेत् ॥ चिंतयेत्परमात्मानंयोवेद्सभवेत्कृती ॥ ३९५ ॥

इति श्रीउमामहेश्वरसंवादे स्वरोदयशास्त्रं संपूर्ण ॥

अर्थ–अपने स्थानमे बैठा हुवा निद्रा वा भोजनका थोड़ा सेवन करै और हृदयमें स्वररूपी परमात्माको चिंतवन करै ऐसा जो जानता है वह कुशल होता है ॥ ३९५ ॥

॥ इति सार्थ स्वरोदयः समाप्तः ॥

गोपालपुरग्रामबास्तव्यपंधितमुन्नालालसूनुनापंडित रामाधीनेनच शिवस्वरोदयस्य एषा भाषाटीका विरचिता तस्याधिकारस्तु श्रीयुत हरिप्रसादस्यैव नान्य पुरुषस्य ॥ शुभंभूयात् ॥

इसमे जो असंगत हो वह सुज्ञ पुरुष शोधन कर लेवें

वेदबाणाऽङ्कचन्द्रेब्देशुचौमास्यऽसितेदले ॥
शोधितंवस्तिरामेणदशम्यांगुरुवासरे ॥१॥

संशोधक वेरी नगरनिवासिद्विज शालिग्रामात्मजवुधवसति रामशर्मा । ग्रंथस्य मुद्रापणे द्वितीयावृतिः ॥

प्र० पंडित हरिप्रसाद भगीरथजीः

संवत् १९५४